नई समाजवादी क्रान्ति का उद्घोषक

बिगुल

मासिक समाचार पत्र • वर्ष 4 अंक 9
अक्टूबर 2002 • तीन रुपये • बारह पृष्ठ

विनिवेश के सवाल पर उठापटक, संघ परिवार का नया पैंतरापलट

हिन्दुत्ववादी आक्रामकता और स्वदेशी-राग की चुनावी जुगलबन्दी

(सम्पादक)

पैंतरापलट करने में संघ परिवार और उसके राजनीतिक मुखौटे भाजपा का कोई सानी नहीं है। 'सिद्धान्तों की राजनीति' करने और 'स्वराज को सुराज बनाने' के भाजपाई दावे की पोल इतनी बार खुल चुकी है कि अब कोई नया घपला-घोटाला न तो जनता के भीतर कोई सनसनी पैदा करता है और न ही संघियों-भाजपाइयों के चेहरों पर लाज-हया का कोई भाव उभरता है। इनकी खाल गैंडे से भी मोटी हो चुकी है और ये बेहयाई की सिद्धावस्था को प्राप्त कर चुके हैं। लेकिन चुनावी राजनीति की मजबूरी है कि जनता के बीच नयी-नयी सनसनी पैदा की जाये। अगला लोकसभा चुनाव अब ज्यादा दूर नहीं है। इसलिए संघ परिवार ने इसके मद्देनजर एक नयी पैंतरेबाजी शुरू की है। वाजपेयी सरकार की विनिवेश नीति के खिलाफ सरकार के भीतर और बाहर से मोर्चा खोलना संघ परिवार के "बौद्धिकों" की इसी चुनावी कपटनीति का ही अंग है।

वाजपेयी सरकार के ही तीन मंत्री – पेट्रोलियम मंत्री राम नाइक, रक्षा मंत्री जार्ज फर्नांडीज और मानव संसाधन विकास मंत्री मुरली मनोहर जोशी अपनी सरकार की अन्धाधुन्ध विनिवेश नीति के खिलाफ बगावत का झण्डा उठाये घूम रहे हैं। उधर वाजपेयी भी सरकार की विनिवेश नीति पर अटल रहते हुए सरकारी नीति और विनिवेश

> संघ परिवार अभी पूरी तरह आश्वस्त नहीं है कि कट्टर हिन्दुत्व का एजेण्डा अगला चुनाव जिता ही देगा। इसलिए उसने स्वदेशी के ढिंढोरचियों को आगे कर विनिवेश विरोध का नया स्वांग रचा है। दरअसल वह इस विकल्प को भी हाथ में रखे रहना चाहता है जिससे जरूरत मुताबिक दोनों में से किसी भी रंग को चटख किया जा सके।

चैम्पियन अरुण शौरी के बचाव में जी जान से जुटे हैं। क्या दिलचस्प नजारा है! स्वयंसेवक प्रधानमंत्री राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सरसंघचालक के. सी. सुदर्शन के विनिवेश विरोधी प्रहारों से भी टस से मस नहीं हो रहा है। संघ परिवार की मजदूर शाखा भारतीय मजदूर संघ के प्रमुख दत्तोपन्त ठेंगड़ी को भी वाजपेयी ठेंगा दिखा रहे हैं। नूरांकुश्ती (मिली-जुली कुश्ती) को असली घमासान के रूप में दिखाकर जनता की आंखों में धूल झोंकने के इस करतब में संघ परिवार अखबार-रेडियो-टी. वी. का बड़ी कुशलता से इस्तेमाल कर रहा है।

और भी दिलचस्प यह है कि उपप्रधानमंत्री लालकृष्ण आडवाणी इस समूचे घमासान को हाथ मलते हुए चश्मे के भीतर से चुपचाप देख रहे हैं। आडवाणी की यह चुप्पी भी संघ परिवार की रणनीति का ही अंग है। आडवाणी को उप- प्रधानमंत्री बनाकर संघ परिवार ने पहले ही यह सन्देश दे दिया है कि अगला लोकसभा चुनाव आडवाणी के कट्टर हिन्दुत्ववादी चेहरे को आगे रखकर

लड़ा जायेगा। अब वाजपेयी के उदारवादी मुखौटे की जरूरत संघ परिवार को नहीं रह गयी है। गुजरात के "सफल प्रयोग", "युवा" एवं "गतिशील" स्वयंसेवक वैंकेया नायडू को भाजपा की कमान सौंपना, राजनाथ सिंह व अरुण जेटली जैसे प्रबुद्ध कार्यकर्ताओं तथा विनय कटियार जैसे प्रचण्ड रामभक्तों को विभिन्न राज्यों का पार्टी-प्रभारी बनाना भी संघ परिवार की चुनावी रणनीति का अंग ही था।

लेकिन संघ परिवार अभी पूरी तरह आश्वस्त नहीं है कि कट्टर हिन्दुत्व का एजेण्डा अगला चुनाव जिता ही देगा। इसलिए उसने स्वदेशी के ढिंढोरचियों को आगे कर विनिवेश विरोध का नया स्वांग रचा है। दरअसल वह इस विकल्प को भी हाथ में रखे रहना चाहता है जिससे जरूरत मुताबिक दोनों में से किसी भी रंग को चटख किया जा सके। उसका चुनावी गणित यह है कि अगर स्वदेशी का रंग चटख करने की जरूरत पड़ेगी तो भी उसे हिन्दुत्व के नाम पर मिलने वाला वोट तो मिलेगा ही और स्वदेशी के नाम पर बोनस वोट मिलेंगे। अगर हिन्दुत्व का रंग चटख करने से ही काम चल जायेगा तो भी स्वदेशी के नाम पर कुछ बोनस वोट मिल जायेंगे।

उत्तर प्रदेश में मायावती का दामन भी भाजपा ने अपनी चुनावी गणित के आधार पर ही पकड़ा है। मायावती को सरकार चलाने के लिए समर्थन के अलावा इस मिलाप से कुछ नहीं हासिल होने वाला है पर पूरे देश के पैमाने पर इससे हिन्दुत्ववादी ताकतों को ही लाभ मिलेगा। दरअसल गुजरात सहित देश के विभिन्न हिस्सों में एक व्यापक रणनीति के तहत दलित-आदिवासी-पिछड़ी आबादी को हिन्दुत्ववादी सोच के सांचे में ढालने का जो खतरनाक प्रयोग संघ परिवार ने शुरू किया है उसी के साथ जोड़कर ही उत्तर प्रदेश में मायावती के साथ गंठजोड़ को भी देखा जाना चाहिए।

भाजपा के भीतर से व संघ परिवार के अन्य सहोदर संगठनों के विनिवेश विरोध और स्वदेशी प्रेम को मुख्यत: भीतरी नीतिगत मतभेदों के रूप में देखना गलत होगा। ऐसा नहीं है कि फासिस्टों के बीच नीतिगत मतभेद नहीं होते। हो सकता है कि संघ परिवार के भीतर विभिन्न गुटों के बीच एक हद तक नीतिगत मतभेद हों। मतभेद तो हिटलर की 'किचेन-कैबिनेट' के भीतर भी थे। लेकिन यह बेहद गौण पहलू है। घोर जनविरोधी, आक्रामक पूंजीपरस्त

(पेज 6 पर जारी)

भीतर के पन्नों पर

- वर्गीय एकजुटता की शानदार मिशाल-२
- जनता के अधिकारों पर एक और कुठाराघात-४
- संघर्ष को चुनावी राजनीति का मोहरा बनने से रोकना होगा-५
- पश्चिम बंगाल में आधी रात की दस्तकों का नया दौर-६
- पार्टी की बुनियादी समझदारी-७
- उत्तर प्रदेश विद्युत के निजीकरण के लिए विश्वबैंक का निर्देश-८
- बक्लमे-खुद के अंतर्गत-एक मौत-६

बहुजन समाज पार्टी की धिक्कार रैली

इज्जत और आज़ादी के सपनों का चुनावी व्यापार

(विशेष संवाददाता)

लखनऊ। 28 सितम्बर की शाम। राजधानी का लक्ष्मण पार्क – वह मैदान जो चुनावबाज पार्टियों की रैलियों के लिए जाना जाता है। इसी मैदान पर दिनभर दलित-अरमानों की 'ऐतिहासिक' भीड़ जमा थी। 'बहन जी' के बुलावे पर आयी थी यह भीड़ – बाबा साहब भीम राव अम्बेडकर को अपमानित करने वाली समाजवादी पार्टी और उसके नेताओं को धिक्कारने के लिए। बहन मायावती और मान्यवर कांशीराम धिक्कारने के बाद अपने-अपने दरबार में वापस लौट चुके हैं। दलित मुख्यमंत्री को समर्थन देने का अहसान चुकाने के लिए रैली में बुलाये गये प्रखर "राष्ट्रवादी" नेता आडवाणी जी

भी धिक्कार-फुत्कार कर दिल्ली फुर्र हो चुके हैं। ... अब शामियाने उजड़ चुके हैं। मैदान की धूल-मिट्टी के बीच पड़ा हुआ है अर्जियों का एक ढेर जिनमें रूखसत हो चुकी भीड़ के अरमान दबे पड़े हैं – इनमें लिखी फरियादें 'बहन जी' तक नहीं पहुंच सकीं!

अर्जियों में लिखी फरियादें हैं – 'लेखपाल और प्रधान को पैसा न दे पाने के कारण आवास का पट्टा नहीं मिल पाया!' 'हमें अभी भी बड़ों का गुलाम बनकर रहना पड़ता है। बिटिया की शादी के लिए पैसा नहीं है, बहन जी जमीन का पट्टा दिला दें तो कृपा होगी!' 'हैण्ड-पम्प आज तक नहीं लगा। आज तक नदी-नाला का गन्दा पानी पीना पड़ता है, आदि-आदि!

रैली से वापस लौटते समय चारबाग रेलवे स्टेशन पर मची भगदड़ में कुचलकर 17 लोग मर गये! ...दिन

(पेज 10 पर जारी)

आपस की बात

जाति-धर्म के झगड़े छोड़ो, सही लड़ाई से नाता जोड़ो

"फूट डालो, शासन करो" की नीति अंग्रेजों की थी, परन्तु यही नीति आज के नेताओं – चाहे वो कांग्रेस, भाजपा, सपा, राजद, माकपा, भाकपा (मा.ले.) अर्थात किसी भी चुनावी पार्टी – का मूलमंत्र है। ये नेता – जो अंग्रेजों की औलादों से भी बढ़कर हैं – फूट डालो, शासन करो की नीति का, नये-नये प्रयोग अनेक रूपों में करते हैं।

ये नेता कभी धर्म के नाम पर – कि तुम हिन्दू, मुस्लिम, सिख, ईसाई, बौद्ध या जैन हो – भाड़े के गुण्डों-मवालियों द्वारा साम्प्रदायिक हिंसा करवाकर हमें आपस में लड़ाते रहे और खुद गद्दियों पर बैठकर, देशी व्यापारियों से सांठ-गांठ कर (जिनका साथ पुलिस, प्रशासन, कानून व न्याय-व्यवस्था देती है) आम मेहनतकश अवाम (जो कि 80 प्रतिशत है) को तरह-तरह से लूटने-खसोटने का काम करते रहे और कर रहे हैं।

ये लोग क्षेत्रवाद के नाम पर लोगों को बांटते हैं और अपना उल्लू सीधा करते हैं। कभी अस्तित्व का मुद्दा उठाकर व कभी जातिगत भावनाओं को उभारकर ये नेतागण वोट की राजनीति करते हैं और कुर्सी हथियाते हैं ताकि नित नये-नये घोटाले करते रहें।

कभी राष्ट्रवाद के नाम पर अर्थात देशभक्ति की भावनाओं को जगाकर अपना मतलब साधते हैं। कहने का मतलब यह है कि कभी जम्मू-कश्मीर में पाकिस्तान द्वारा आतंकवाद फैलाना या बांग्लादेश के शरणार्थियों का मुद्दा उठाकर आम मेहनतकश लोगों का ध्यान बुनियादी समस्याओं से हटाना होता है ताकि वे अपने अधिकारों की मांग के लिए उठ खड़े न हों। इनको मतलब है सिर्फ अपने भत्तों-तनख्वाहों की तीन गुनी बढ़ोत्तरी से। इसीलिए इस मामले में किसी भी पार्टी का नेता दूसरी पार्टी के नेता का विरोध नहीं करता है। इनके पास घपले-घोटालों के लिए पैसा है लेकिन बेरोजगारी भत्ता देने के लिए पैसा नहीं है। जबकि देश की 60 प्रतिशत से भी अधिक जनता लगातार तबाह और बर्बाद होती जा रही है, यहां तक कि आम मध्यमवर्ग की आने वाली पीढ़ियों का भी कोई भविष्य नहीं है। ये नेता और इस देश के 20 प्रतिशत लोग यानी पूंजीपति, सेठ, ठेकेदार, बड़े-बड़े अफसरशाह सुख और समृद्धि के टापू पर खड़े हैं; जो खुद कुछ नहीं करते हैं सिर्फ 80 प्रतिशत जनता यानी हम लोगों की कमाई हुई खून-पसीने की कमाई का शोषण करते हैं और लूटते-खसोटते हैं। लूटने-खसोटने के तरीके भी ऐसे कि दिमाग चकरा जाए।

आज पूरे देश में उदारीकरण व निजीकरण के नाम पर छंटनी-तालाबंदी – चाहे वो सरकारी विभाग हो या प्राइवेट – जारी है। मजदूरों के मेहनत की कमाई को ठेकेदार लेकर भाग जाता है और मजदूर कुछ नहीं कर पाता है या फिर ठेकेदार अगर पैसा देता भी है तो रुला-रुलाकर क्योंकि कानून, सरकार व व्यवस्था, न्याय व पुलिस सब पैसे वालों अर्थात लुटेरों की रखैल बन चुकी है।

ऐ मेहनतकश लोगो (मजदूर, छात्र, नौजवान, बुद्धिजीवी, पत्रकार, डाक्टर, खेतिहर मजदूर, किसान व देश के तमाम शोषित व व्यवस्था से छले गये लोगों) जिस तरह हमने अंग्रेज व्यापारियों के खिलाफ लड़कर आज़ादी हासिल की थी; ठीक उसी तरह आज अपनी सच्ची आज़ादी के लिए धर्म-जाति, ऊंच-नीच के भेदभाव को छोड़कर एक हो लड़ने की तैयारी करो, इन देशी व्यापारियों-पूंजीपतियों और वर्तमान व्यवस्था एवं इन चाटुकार नेताओं के खिलाफ। इसी में हम सबकी भलाई है और तभी शोषणमुक्त समाज बनेगा। अन्यथा हम इसी तरह लगातार दिन-ब-दिन तबाह और बर्बाद होते जायेंगे।

-प्रभु, नोएडा (उ.प्र.)

बिना हारे, बिना थके लड़ना ही हमारी ताकत

साथियो, आपको याद होगा ई. डब्ल्यू.एस. कालोनी का गोलू हत्याकाण्ड, जो कि बिगुल के मई अंक में छप भी चुका है। किस तरह जनता के शान्तिपूर्ण विरोध को पुलिस ने भड़काया और फिर दमन चक्र चलाया। उस काण्ड में 32 लोगों को पुलिस ने गिरफ्तार करने के बाद अपनी दरिंदगी का शिकार बनाया जिनमें तीन महिलाएं भी थीं। उन्हें भी तीन दिन तक पुलिस हिरासत में रखने के बाद अदालत में पेश किया गया। काफी दिनों के बाद 8 लोगों की जमानत हुई और अभी भी लुधियाना की सेन्ट्रल जेल में 24 लोग बन्द हैं, जिनके दुख की दास्तान सुनने वाला कोई नहीं है। ऐसे लोगों को बन्दी बनाया गया जो उस दिन लुधियाना में थे ही नहीं। बन्द 24 लोगों में से लगभग सभी मजदर हैं जिनके परिवार का भरण-पोषण उन्हीं पर आधारित था। साथियो, हम लोग अन्दाजा लगा सकते हैं कि उनके परिवार पर क्या गुजरती होगी क्योंकि हम मज़दूर हैं और एक मज़दूर की समस्या को अच्छी तरह जानते हैं। पुलिस को क्या और पूंजी के गुलाम उन राजनीतिक कुत्तों को क्या जो चुनाव के समय हमसे वोट के लिए झूठी हमदर्दी जताने आते हैं। साथियो, समझना होगा पूंजी के इन बिकाऊ टट्टुओं को कि किस तरह वे हमारे बीच बैर के बीज बोकर अपना उल्लू सीधा करते हैं। उन लागों से मदद के लिए फरियाद की गई। वे क्या समझेंगे हमारे दुःख दर्द को, वे क्या जानें भूखे रहने का दर्द, उनको क्या पता कि गरीबी क्या होती है। वे नहीं समझेंगे इसको कि मां-बाप के सामने उनकी औलाद छोटी-छोटी इच्छा के लिए, इलाज के लिए और भूख से तड़पती है तो मां-बाप का कलेजा फट जाता है। ऐसे ही हालात जेल में बन्द 24 लोगों के परिवारों के हो रहें हैं, पारिवारिक स्थिति बदतर है, रोटी के लाले पड़े हैं, इन लोगों का जुर्म इतना ही है कि अपने बच्चों की हत्या का विरोध पुलिस के निकम्मेपन के खिलाफ जताया और पुलिस ने बदले की भावना से उनको जेल में बन्द कर दिया। साथियो, सोचो जरा, कोई मजदूर अपने परिवार के खिलाफ किसी बर्बरता के लिए इन्साफ नहीं मांग सकता है और अगर मांगता है तो अंजाम होगा पुलिस के अत्याचार की चक्की में पिसना, ऐसी ही एक घटना डी.एम.सी. हास्पिटल की है जहां मैनेजमेण्ट के अत्याचार के शिकार कर्मचारी अपने हक और हीरो हार्ट सेण्टर का ठेकाकरण रोकने के लिए शान्तिपूर्वक धरना दे रहे थे कि मैनेजमेण्ट के इशारे पर पुलिस ने कर्मचारियों पर ऐसा कहर ढाया कि पंजाब का आतंकवाद भी पीछे छूट गया। पुरुष कर्मचारियों के अलावा महिला कर्मचारियों पर भी पुलिस द्वारा ऐसा जुल्म ढाया गया कि सुनकर रोंगटे खड़े हो जाते हैं और चेतनशील नौजवानों का खून खौल उठता है। साथियो, पुलिस प्रशासन और पूंजीवादी व्यवस्था का यह अत्याचार हम कब तक सहते रहेंगे, जरा सोचो, क्या कोई मजदूर और हर तरह से मजबूर कानून तोड़ सकता है, पुलिस के खिलाफ दुस्साहस कर सकता है। मज़दूर तो बना ही है सिर्फ पिसने के लिए, जुल्म सहने के लिए, जानवरों जैसी जिन्दगी जीने के लिए। लेकिन नहीं, हमारी यही सोच हमें कमजोर बनाती है, हमें वैज्ञानिक सोच अपनानी होगी और जुझारू एकता अपनाकर इस जालिम सत्ता के खिलाफ आर-पार की लड़ाई के लिए कमर कसनी होगी, तभी हम इससे मुक्ति पा सकते हैं और मनुष्य की जिन्दगी जी सकतें हैं। यह मत सोचो कि हमारा समय तो जैसे-तैसे बीत गया और बीत रहा है, हम क्यों लड़ें? लेकिन याद रखो, अपने लिए तो सिर्फ जानवर जीता है, मनुष्य तो सामाजिक प्राणी है, हमारा समाज के प्रति भी कुछ कर्तव्य बनता है। साथ ही, हमें अपने बच्चों के भविष्य के बारे में भी सोचना होगा। यदि नहीं सोचेंगे तो आने वाली पीढ़ी हमें कभी माफ नहीं करेगी, हम कायर की जिन्दगी जीते-जीते मर जायेंगे। मरना तो है ही एक दिन लेकिन ऐसी मौत मरो कि अहसास हो कि हमने समाज के प्रति भी अपना फर्ज निभाया और आने वाली पीढ़ियां हमें याद करें और हमारे बच्चे हम पर गर्व करें। उदाहरण के लिए आपको याद दिला दूं कि अमेरिका के महान मज़दूर नेता पार्सन्स, स्पाइस, ऐंजल आदि ऐसे ही योद्धा थे जो मजदूरों के हक के लिए लड़ते-लड़ते फांसी पर चढ़ गये, और अधूरे काम को अपने बीवी-बच्चों पर डाल गये ऐसे थे प्रिय और महान मजदूर नेता पार्सन्स, यदि पूरी नहीं तो कुछ उनसे सीख लेते हुए उनके दिखाये मार्ग पर चल सकते हैं। बिना हारे, बिना थके कोशिश करते रहना ही हमारी ताकत है।

नागेन्द्र, लुधियाना

बिगुल का स्वरूप, उद्देश्य और ज़िम्मेदारियां

1. 'बिगुल' व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मजदूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मजदूर आंदोलन के इतिहास और सबक से मजदूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूंजीवादी अफवाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।

2. 'बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मजदूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।

3. 'बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को नियमित रूप से छापेगा और स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मजदूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।

4. 'बिगुल' मजदूर वर्ग के बीच लगातार राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी-चवन्नीवादी भुजाछोर "कम्युनिस्टों" और पूंजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी-अराजकतावादी देडयूनियनबाजों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की कतारों से क्रान्तिकारी भरती के काम में सहयोगी बनेगा।

5. 'बिगुल' मजदूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

बिगुल यहां से प्राप्त करें

- शहीद पुस्तकालय, डा. दूधनाथ, जनगण होम्यो सेवा सदन, **मर्यादपुर**, मऊ
- सीपी बुक स्टाल, सआदतपुरा (निकट रोडवेज), मऊनाथभंजन, **मऊ**
- जनचेतना, जाफरा बाजार, **गोरखपुर**
- विजय इन्फारमेशन सेन्टर, कचहरी बस स्टैण्ड, **गोरखपुर**
- विश्वनाथ मिश्र, नेशनल पी.जी. कालेज, **बड़हलगंज, गोरखपुर**
- जनचेतना, डी 68, निशातगंज **लखनऊ**
- जनचेतना स्टाल, काफी हाउस के पास, हजरतगंज, **लखनऊ**, (शाम 5 से 8:30)
- राहुल फाउण्डेशन, 69, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, **लखनऊ**
- विमल कुमार, बुक स्टाल, निकट नीलगिरि काम्प्लेक्स, ए ब्लाक, इंदिरानगर, **लखनऊ**
- विजय कुमार, 55/3, E.W.S. आवास विकास, रुद्रपुर (ऊधमसिंहनगर)
- प्रोग्रेसिव बुक सेंटर, विश्वनाथ मंदिर गेट, बी.एच.यू, **वाराणसी**
- राजीव वर्मा स्टूडेण्ट एजुकेशनल सेंटर, मैनाताली (पुलिस चौकी के पास), मुगलसराय, जिला-चन्दौली
- राजेन्द्र प्रसाद, रेणु मेडिकल की गली, मुख्य सड़क, रेणुकूट, सोनभद्र
- सत्यम वर्मा, 81, समाचार अपार्टमेंट, मयूर विहार-फेज-1, **दिल्ली**
- ललित सती, एल.आई.सी., फैज रोड शाखा, **दिल्ली**
- नई किरण पुस्तक भंडार, एफ-56, हरकेश नगर, ओखला, नई दिल्ली
- डी. के. सचान, एस.एच. – 272, शास्त्रीनगर **गाजियाबाद**
- सुनील कुमार सिंह, सेक्टर-12 बी, 3159, **बोकारो इस्पातनगर, बोकारो**
- गणपतलाल, ग्राम काजी रसूलपुर, पो. तेपढ़ा, **बेगूसराय**
- पीपुल्स बुक हाउस, पटना कालेज के सामने, पटना
- विमर्श, 22, स्वास्तिक काम्प्लेक्स, रसल चौक **जबलपुर**
- नरभिन्दर सिंह, द्वारा डा. सुखदेव हुन्दल, ग्रा/पो. **सन्तनगर**, जिला-सिरसा
- पंकज, प्लाट नं. 33, सेक्टर-15, सोनीपत (हरियाणा)
- सुखविंदर द्वारा कॉ0 दशरथ लाल, मकान नं. 14, लेबर कॉलोनी, गिल रोड, **लुधियाना** (पंजाब)
- राकेश गोरखा, सरस्वती पुस्तक मंदिर, प्रधान नगर, सिलीगुड़ी, **दार्जीलिंग**
- बुक मार्क, 6, बंकिम चटर्जी स्ट्रीट, **कलकत्ता**
- विश्व नेपाली पुस्तक सदन, श्रवनपथ, बुटवल, रुपनदेई, **नेपाल**
- विशाल पुस्तक सदन, बिजुवार बाजार, प्यूठान राप्ती अंचल
- विशाल पुस्तक पसल, अस्पताल लाइन, बुटवल, लुम्बिनी, नेपाल

होण्डा पावर प्रोडक्ट्स, रुद्रपुर (उत्तरांचल) के संघर्षरत साथियों के नाम
झारखण्ड और प. बंगाल के कोयला-इस्पात-रेल मज़दूरों की चिट्ठी

वर्गीय एकजुटता की शानदार मिसाल

संग्रामी साथियो,

उत्तरांचल में रुद्रपुर स्थित 'होण्डा पावर प्रोडक्ट्स' के आप मज़दूर साथियों ने फैक्ट्री की मशीनों को उखाड़ने तथा अन्य जगह शिफ्ट करने के विरोध में संगठित होकर जो संघर्ष किया है, और कर भी रहे हैं, वह सराहनीय है। वास्तव में वर्ग स्वार्थ के प्रति एक जो लड़ाई लड़नी है, उसमें इस संघर्ष से एक नयी शक्ति को जागृत करने का स्पष्ट इरादा झलकता है। आप सबकी यह लड़ाई एक धारदार लड़ाई के रूप में उभरकर सामने आयी है। निन्यानबे(99) दिन फैक्ट्री में प्रबन्धन द्वारा "श्रमिक तालाबन्दी" रहा। अन्ततः सौवें दिन एकताबद्ध होकर संघर्ष करते हुए तालाबन्दी को खत्म कराकर आप श्रमिकों का काम पर वापस आना, अन्य उद्योगों में कार्यरत श्रमिकों के लिए, जो मज़दूर विरोधी नीतियों और बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के आतंक से भयभीत तथा दबे हुए हैं, एक सन्देश दे रहा है।

वास्तव में आज उदारीकरण के नाम पर साम्राज्यवादी पूंजीपतियों और सरकार द्वारा मज़दूरों के ऊपर मज़दूर विरोधी नीतियों को लागू करके मज़दूरों को प्रताड़ित किया जा रहा है। इससे बचने के लिए दुनिया के तमाम मज़दूरों को संघर्ष के अलावा कोई और रास्ता दिखायी नहीं दे रहा है।

आप मज़दूर साथियों ने अपनी लड़ाई को "समाज के प्रत्येक व्यक्ति की लड़ाई है", यह बात बखूबी बताते हुए पूरे समाज को अपनी लड़ाई में सहभागी बनाने का जो काम किया है, वह वास्तव में आज की परिस्थिति में मज़दूरों को लड़ने और कामयाबी हासिल करने के लिए एक प्रेरणा है। आप लोगों ने वर्ग हित के संघर्ष हेतु एक नयी छवि प्रस्तुत की है।

जहां तक "कोयला श्रमिक टीम" का विचार है, इसमें सक्रिय सचेतन मज़दूर, मज़दूर विचारधारा से लैस अगुवा मज़दूरों को लेकर तमाम उद्योगों में एक मज़दूर केन्द्र बनाना चाहते हैं। वही श्रमिक अपने-अपने उद्योग के तमाम श्रमिकों के बीच जाकर वर्ग हित के प्रति प्रचार-प्रसार के माध्यम से जागरूक और संगठित करने का प्रयास करेंगे। क्योंकि वर्तमान में जो आक्रमण मज़दूरों के ऊपर हो रहा है उसका सामना किसी एक उद्योग या किसी एक कारखाने की मज़दूर लड़ाई से नहीं किया जा सकता।

हम मज़दूर साथियों का आप मज़दूर साथियों के साथ प्रत्यक्ष रूप में कोई सम्पर्क तो नहीं है, लेकिन आपके यहां से सम्पादित स्थानीय अखबार 'बिगुल' के माध्यम से आप लोगों की फैक्ट्री में मज़दूरों के ऊपर हो रहे आक्रमण और उसके विरोध में आपकी लड़ाई में वहां की स्थानीय जनता के अपार समर्थन का खुलासा हमारी 'कोयला मज़दूर टीम' बी.सी.सी.एल., धनबाद (झारखण्ड) को पढ़ने को मिला, जिससे हम मज़दूर साथी अवगत हुए।

आप मज़दूर साथी इस विकट परिस्थिति में जो संग्राम चला रहे हैं, उसमें हम कोयला मज़दूर साथी; प्रत्यक्ष तो नहीं अप्रत्यक्ष रूप में, पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से ही सही, आपके संघर्ष के साथ हैं। और हम, "कोयला श्रमिक टीम" की तरफ से आप लोगों के संघर्ष को पूर्ण रूप से क्रान्तिकारी समर्थन व्यक्त करते हैं।

आप सभी इस बात को अगर कभी महसूस करेंगे कि हमारा सम्पर्क प्रत्यक्ष रूप में भी हो तो पत्राचार द्वारा सम्पर्क करते हुए उसका समय निश्चित किया जा सकता है। और आज की मज़दूर विरोधी नीतियों के विरोध में हम मज़दूर केन्द्रों का क्या दायित्व है, उस पर आमने-सामने बैठकर 'मज़दूर वर्ग एकता' और "वर्ग स्वार्थ" की प्राप्ति हेतु एक स्थायी हल निकालने का प्रयास किया जा सकता है।

हमारे मज़दूर वर्ग के हित के साथ पूरे समाज का हित तथा उसकी रूपरेखा जुड़ी हुई है। श्रमिक नेतृत्व के माध्यम से पूरे समाज को जोड़ने का काम करना है। इसी विचार के साथ हम सब एक बार फिर साम्राज्यवाद, पूंजीवाद के विरोध में आप लोगों की एकताबद्ध तरीके से चल रही क्रान्तिकारी लड़ाई के प्रति समर्थन तथा अभिनन्दन व्यक्त करते हैं।

लाल सलाम!

कोयला श्रमिक टीम
भारत कोकिंग कोल लिमिटेड
धनबाद (झारखण्ड)
(कोल इण्डिया का एक अंग)

सलह साथियों के हस्ताक्षर

संघर्षरत साथियो,

अन्याय के खिलाफ और मज़दूरों एवं समूचे मजदूर वर्ग पर अविवेकपूर्ण कार्रवाई के खिलाफ आपका बहादुराना संघर्ष जिन्दाबाद! हम रेलवे के मज़दूर ऐसे बहुराष्ट्रीय निगम (अन्तरराष्ट्रीय वित्तीय पूंजी) के खिलाफ संघर्ष कर रहे मज़दूरों एवं उनके आन्दोलन को दिल की गहराइयों से "लाल सलाम" भेजते हैं। हम ऐसे "हिटलरशाही" प्रशासन से नफरत करते हैं और राजनीतिज्ञों एवं प्रशासन के कुत्सित गंठजोड़ को भर्त्सना करते हैं। हम उम्मीद करते हैं कि भारत में मज़दूर वर्ग आन्दोलन की मौजूदा विकट स्थिति में आप पथनिर्माता/अग्रदूत की भूमिका निभाएंगे।

अन्त में, हम समूचे मज़दूर वर्ग के हित में आपसे वर्ग-सम्बन्ध कायम करना चाहते हैं।

मज़दूर वर्ग की एकता जिन्दाबाद!
इंक़लाब जिन्दाबाद!
कामरेडाना अभिवादन के साथ!

एक सौ तेरह रेल मज़दूर साथियों के हस्ताक्षर

आसनसोल
जिला- बर्दवान (प.बं.)

उत्तरांचल से उद्योगों का पलायन जारी

(बिगुल संवाददाता)

भीमताल (नैनीताल)। उत्तरांचल राज्य से उद्योगों के पलायन/बन्दी की कड़ी में भीमताल स्थित उषा ग्रुप के दो और कारखानों के नाम शामिल हो गये। आर.के.के. ग्रुप ने अन्ततः यहां की अपनी दोनों यूनिटों 'उषा इण्डिया' व 'उषा मारकोनी' को पूर्णतः बन्द कर दिया है। यहां के मज़दूर-कर्मचारी आन्दोलन की राह पर हैं। उधर हिसाब चुकता करने आए प्रबंधकों को मज़दूरों ने घण्टों बन्धक बनाए रखा।

सेमी कण्डक्टर, सोलर, इन्वर्टर कण्डक्टर आदि बनाने वाले इन कारखानों की स्थापना 1988 में हुई थी। शुरू में यहां रेजिस्टेंस, माइक्रम आदि का भी उत्पादन होता था जिसे 1992 में फरीदाबाद शिफ्ट कर दिया गया। एक समय यहां 250-300 श्रमिक काम करते थे लेकिन 1992 के बाद से धीरे-धीरे यह संख्या घटायी जाती रही जो वर्तमान समय में महज 49 रह गयी है। मालिकान ने इस वर्ष जनवरी से ही यहां का उत्पादन ठप कर रखा था। वेतन आदि के भुगतान में भी गतिरोध बना हुआ था।

दोनों कारखानों में यूनियन न होने और मज़दूरों की संख्या कम होने से शुरू से यहां कारगर प्रतिरोध की कोई स्थिति बन नहीं सकी। बाद में जब मज़दूर अपने अस्तित्व का संघर्ष करने को बाध्य हुए तो उन्होंने चुनावी राजनीतिक मदारियों का दामन थामा। मजेदार बात यह है कि जब यहां के मज़दूर राज्य के "विकास पुरुष" मुख्यमंत्री से कारखानों के किसी भी कीमत पर बन्द न होने का आश्वासन लेकर लौटे तो उसके कुछ दिनों बाद ही प्रबंधन कारखानों में ताला बन्द करके यहां से चलता बना।

राज्य से उद्योगों का बन्दी/पलायन कोई नई बात नहीं है। लगभग डेढ़-दो दशक पूर्व भारी सब्सिडियां व सहूलियतें देकर तत्कालीन उत्तर प्रदेश सरकार ने यहां उद्योगों की स्थापना करवाई थी। धीरे-धीरे मुनाफे को निचोड़ने व सब्सिडियों/सहूलियतों को खा-पचाकर मालिकों ने यहां से पलायन की राह पकड़ी और हजारों परिवारों को सड़कों पर मरने-खपने के लिए छोड़ दिया। स्थिति यह है कि एक समय उद्योगों की नगरी कहलाने वाले ऊधमसिंह नगर के दो दर्जन से ज्यादा उद्योग और नैनीताल जिले के एक दर्जन से ज्यादा कारखाने बन्द हो चुके हैं। कई और छोटे-बड़े कारखाने बन्द होने/पलायन करने की बाट जोह रहे हैं।

अभी दो दिन पूर्व जसपुर (ऊधमसिंह नगर) स्थित कताई मिल के एक युवा श्रमिक प्रभु महतो की भुखमरी व बीमारी के कारण मौत हो गयी। इससे पूर्व यहां के लगभग तीन दर्जन श्रमिकों की मौतें हो चुकी हैं। राज्य की जसपुर व काशीपुर स्थित दोनों सरकारी कताई मिलें विगत चार वर्षों से बन्द पड़ी हैं और यहां के मज़दूर वेतन के अभाव और ऊहापोह की स्थिति में बेहद बदहाली का जीवन यापन कर रहे हैं। कोई रिक्शा चला रहा है, कोई फेरी लगा रहा है और इन्हीं स्थितियों में वे आन्दोलन भी चला रहे हैं। हालांकि ट्रेड यूनियन नेतृत्व के नाकारेपन और अलग-अलग बंटवारे के कारण आन्दोलन भी दयनीय स्थिति में है। कुछ दिनों पूर्व यहां के मज़दूरों ने "विकास पुरुष" कहलाने वाले कांग्रेसी मुख्यमंत्री नारायण दत्त तिवारी से जब चार वर्षों से बन्द पड़ी इन मिलों को चालू करवाने और वेतन का भुगतान करने की मांग की तो वे बड़े ही सफाई से इससे कन्नी काट गये और मज़दूरों का माखौल उड़ाने के लिए काशीपुर के एक पूर्व विधायक को यह सलाह दिया कि वे मिल मज़दूरों के बच्चों को गोद लेकर उनकी पढ़ाई की व्यवस्था करें।

राज्य के 'कुमाऊं मण्डल विकास निगम' व 'गढ़वाल मण्डल विकास निगम' द्वारा स्थापित तमाम कारखाने भी या तो बन्द हो चुके हैं या फिर अपनी अन्तिम सांसें गिन रहे हैं। 'कुमाऊं मण्डल विकास निगम' की प्लास्टिक फैक्टरियां, ट्रांस केबल फैक्टरियां आदि भी इसी की शिकार हैं। सरकारी उपक्रम हिल्ट्रान पहले ही बन्द हो चुका है। राजधानी देहरादून के निकट स्थित 'उत्तर प्रदेश खनिज विकास निगम' को सहयोगी 'उत्तर प्रदेश कार्बाइड एण्ड केमिकल लिमिटेड' बन्द पड़ा है और वहां के श्रमिक वेतन भुगतान और कई अन्य समाधोजन के लिए लम्बे समय से संघर्षरत हैं। राज्य में दवा बनाने का सबसे बड़ा सार्वजनिक क्षेत्र का कारखाना आई.डी.पी.एल. बन्द हो चुका है और

(पेज 10 पर जारी)

होण्डा से एक और श्रमिक का निष्कासन

यदि अब भी नहीं चेते, तो कल बहुत देर हो चुकी होगी

(बिगुल संवाददाता)

रुद्रपुर (ऊधम सिंह नगर), अक्टूबर। स्थानीय जनरेटर निर्माता बहुराष्ट्रीय कम्पनी 'होण्डा पावर प्रोडक्ट्स' के प्रबन्धन ने एक वरिष्ठ श्रमिक व श्रीराम होण्डा श्रमिक संगठन के पूर्व मन्त्री बी.सी. पाण्डे की सेवा समाप्त कर दी है। जिस वक्त राजधानी दिल्ली में दूसरे श्रम आयोग की घातक संस्तुतियों पर "सहमति" बनाने के लिए सम्मेलन चल रहा था उस वक्त यहां एक श्रमिक नेता को बर्खास्तगी का नोटिस थमाया जा रहा था। इस घटना से मजदूरों में भारी आक्रोश व्याप्त है। मज़दूर एक बार फिर आन्दोलन की राह पर हैं।

इससे कुछ दिन पूर्व कारखाने में इस वर्ष होने वाले त्रिवर्षीय वेतन समझौते को करने की जगह प्रबन्धन ने उल्टे श्रमिक संगठन को अपना एक मांगपत्रक सौंप दिया था जिसमें वर्तमान में मिलने वाले वेतन को घटाने, परिवहन, कैण्टीन सहित तमाम सहूलियतों में कटौती करने और उत्पादन नार्म्स में भारी बढ़ोत्तरी का प्रस्ताव दिया था, जिससे कारखाने में उथल-पुथल की स्थिति बनने लगी थी।

होण्डा प्रबन्धन उदारीकरण की नीतियों को सख्ती से कारखाने में लागू करने की कुचेष्टाओं में लगातार लगा हुआ है। मुनाफे की अंधी हवस में होण्डा प्रबन्धन यहां के मज़दूरों द्वारा लम्बे संघर्ष के दौरान प्राप्त सहूलियतों को छीनने, तरह-तरह की तिकड़मों से लोगों को नौकरियों से निकालने और यूनियन को तोड़ने-कमजोर करने में लगातार लगा हुआ है। उसकी मंशा यहां से कारखाने को बन्द करके नोएडा स्थानान्तरित करने की है। नयी जगह पर नयी सब्सिडियों के साथ मामूली दिहाड़ी पर दैनिक वेतनभोगियों से काम करवाकर भारी मुनाफा निचोड़ना इस दौर में मालिकों की नीयत बन चुकी है।

उल्लेखनीय है कि होण्डा प्रबन्धन किश्तों में यहां से फैक्ट्री ले जाने की अपनी योजना पर लगातार काम कर रहा है, जिसके खिलाफ पिछले दिनों होण्डा के मज़दूरों ने लगभग चार माह लम्बा व जुझारू संघर्ष चलाया। इस संघर्ष के बावजूद प्रबन्धन कारखाने के महत्वपूर्ण एल्यूमिनियम मशीन शाप को यहां से शिफ्ट करने में कामयाब रहा। अभी मज़दूर संभल भी नहीं पाये थे कि प्रबंधन ने उन पर और ज्यादा दबाव बनाने के प्रयास तेज करते हुए अपना मांगपत्र देने के बाद बी. सी. पाण्डे के निष्कासन की कार्रवाई की है। पाण्डे पर फैक्ट्री द्वारा एक माह की ट्रेनिंग पर बैंगलोर भेजे जाने के दौरान होटल का फर्जी बिल देने का आरोप लगाकर, घरेलू जांच की औपचारिकताएं प्रबन्धन ने पूरी करवाई और उन्हें निकाल बाहर किया। आरोप पत्र पिछले शिफ्टिंग आन्दोलन के पूर्व प्रबन्धन द्वारा उन्हें दिया गया था और आन्दोलन के दौरान ही उसने तथाकथित जांच कार्रवाई भी पूरी की थी। इससे पहले भी विभागाध्यक्ष से मारपीट के आरोप में यूनियन के तत्कालीन अध्यक्ष सहित दो मज़दूरों की सेवाएं प्रबन्धन समाप्त कर चुका है। जाहिरा तौर पर, यदि एकजुट जुझारू संघर्ष नहीं हुआ, तो प्रबन्धन मज़दूरों को तरह- तरह से फंसाकर और आरोप मढ़कर उन्हें निकालने का क्रम जारी रखेगा।

'बिगुल' (अगस्त,2002) में 'होण्डा का मज़दूर आन्दोलन: कुछ जरूरी निचोड़, कुछ कीमती सबक' के तहत पूरे आन्दोलन का सार संकलन करते हुए यह स्पष्ट तौर पर लिखा गया था कि होण्डा मज़दूरों को अपने अस्तित्व की लड़ाई के लिए पूरे परिवारों सहित घेरा डालना होगा। पिछले संघर्ष में इस चूक से सबक लेकर ही भविष्य के संघर्षों को आगे बढ़ाया जा सकता है। समीक्षा लेख में बुनियादी और सर्वोपरि कार्यभार के तौर पर लिखा गया था कि उदारीकरण और 'श्रम सुधार' के इस दौर में मज़दूर आबादी को व्यापक इलाकाई एकताबद्ध संघर्ष की तैयारी करनी होगी, साथ ही अपने रोजमर्रे के संघर्षों में सक्रिय भागीदारी करते हुए अपनी मुक्ति की फैसलाकुन लड़ाई की तैयारी में जुटना होगा।

होता यह है कि मालिक वर्ग मज़दूरों की तबाही और उनके खून के एक-एक कतरे को निचोड़ने की खतरनाक कामों में लगातार लगा रहता है। जबकि मज़दूर वर्ग तब तक निश्चिन्त पड़ा रहता है जब तक कि वह मालिकों के हमले का शिकार नहीं हो जाता। यहां तक कि किसी एक मज़दूर के ऊपर होने वाले हमले को भी वह अपने ऊपर का हमला नहीं समझता है। प्रबन्धन का काम ही है कि वह जाति-धर्म-क्षेत्र-विभाग या अलग-अलग रूप में बांट दे और बारी-बारी से एक-एक को तोड़ता रहे, ताकि उसकी लूट का जबर्दस्त राज बदस्तूर जारी रहे। अपने इसी हथियार से वह कभी एक बी. सी. पाण्डे को निकालता है तो कभी दूसरे को।

होण्डा मज़दूरों को यह बात समझनी ही पड़ेगी, और यह बात बाकी कारखानों के मज़दूरों को भी सोचनी होगी। क्योंकि जो अभी होण्डा के मज़दूर के साथ हुआ वही ईस्टर इण्डस्ट्रीज के, आनन्द निशिकावा के, ए.एल.पी. और अन्य कारखानों के मज़दूरों के साथ भी हो रहा है। मालिकों के इन हथकण्डों के खिलाफ मज़दूर यदि अब भी नहीं चेते तो कल को बहुत देर हो चुकी होगी।

उत्तरांचल में स्थायी निवास प्रमाण पत्र का मामला

जनता के अधिकारों पर एक और कुठाराघात

(बिगुल संवाददाता)

उत्तरांचल राज्य जबसे अस्तित्व में आया है तबसे पहले से ही संकटग्रस्त आम जन के सामने नये-नये संकट उभरने लगे हैं। बन्द होते उद्योग, सिमटते रोजगार के अवसर, दोहरे कर की मार आदि के साथ ही राज्य में स्थायी निवास प्रमाण पत्र का एक ऐसा प्रावधान बना दिया गया है जिसके तहत मेहनतकश गरीब आबादी राज्य की स्थायी निवासी हो ही नहीं सकती।

राज्य गठन के बाद तत्कालीन भाजपा सरकार ने कई फेरबदल के बाद 20 नवम्बर 2001 को राज्य के स्थायी निवासी होने की एक नीति घोषित की। इस नीति के तहत राज्य में स्थायी निवासी का प्रमाणपत्र उसे ही प्राप्त होगा जिनके पास राज्य में 15 वर्ष से स्थायी भूमि या मकान हो। राज्य की वर्तमान कांग्रेसी सरकार भी इसी नीति का अनुपालन करवा रही है। उत्तरांचल राज्य में पहाड़ से लेकर मैदानी इलाके तक एक बड़ी आबादी ऐसी है जिसके पास न तो जमीन का कोई टुकड़ा है और न ही रहने को घर। उसके पास केवल अपना श्रम है, जिसकी बदौलत वह किसी तरह अपना जीवन यापन करती है। शिक्षा और रोजगार दोनों के लिए स्थायी निवास प्रमाणपत्र की बाध्यता के चलते इस श्रमजीवी आबादी के बच्चों का भविष्य अंधकारमय हो गया है।

गौरतलब है कि राज्य का तराई-भाभर क्षेत्र एक समय में बीहड़ जंगली और दलदली इलाका था। यहां के पर्वतीय क्षेत्रों में भोटिया, जौनसारी व राजी जनजातियां व तराई क्षेत्र में थारू व बुक्सा जनजातियां रहा करती थीं। 1991 की जनगणना के अनुसार इनकी संख्या 2.43 लाख थी। आजादी के बाद पूरे तराई क्षेत्र में बंगाल व पंजाब से अप्रवासी आबादी को तथा पूर्वी उत्तर प्रदेश से स्वतंत्रता संग्रामियों को लाकर बसाया गया। बाद में रोजगार की तलाश में पूर्वी उत्तर प्रदेश व बिहार से मेहनत-मजूरी करने के लिए भी लोग आते रहे और यहीं के होकर रह गये। इसके साथ ही पहाड़ से भी एक आबादी आकर यहां बस गयी।

विभिन्न इलाकों से आकर बसे लोगों ने, यहां खतरनाक जंगली जानवरों और भयानक बीमारियों से जूझते हुए तराई-भाभर क्षेत्र को अपने श्रम से न केवल आबाद किया वरन खुद गरीबी की जिन्दगी जीते हुए इसे हरित क्रान्ति का क्षेत्र बना दिया। यहां 15 हजार एकड़ में पंतनगर कृषि विश्वविद्यालय की स्थापना हुई जिसके लगभग 10 हजार एकड़ फार्म को भी पूर्वी उत्तर प्रदेश, बिहार व अन्य स्थानों से आयी गरीब आबादी ने ही अपने खून-पसीने से सींचकर लहलहाते खेतों में तब्दील किया। चालाकी और धूर्तताओं से कइयों ने इस राज्य में हजारों एकड़ तक के बड़े-बड़े फार्म हाउस बनाये जिसे इसी मेहनतकश आबादी ने अपनी मेहनत के दम पर धन-धान्य पूर्ण बनाया पर स्वयं बदहाली का जीवन जीती रही।

इस मेहनतकश आबादी में से एक बड़े हिस्से के पास न तो अपनी कोई जमीन है और न ही कोई मकान। एक आबादी ऐसी भी है जिसने किसी तरह अपने रहने आदि के लिए कुछ जमीनें हासिल भी कर ली हैं तो वे उनके अपने नाम नहीं है, क्योंकि कोई नजूल की जमीन है, कोई वर्ग चार की है तो कोई राजस्व भूमि नहीं है तो कोई वनक्षेत्र की भूमि है। इसके लिए भी उन्हें लम्बे-लम्बे संघर्ष करने पड़े थे। जंगल-जमीन-शराब माफियाओं के कब्जे वाले इस राज्य में जो भी

(पेज 8 पर जारी)

आपस की बात

मज़दूर वर्ग के संघर्ष की हर हार और हर जीत के बाद राजनीतिक कार्य को तेज करना बेहद जरूरी

जनरेटर बनाने वाली जापानी बहुराष्ट्रीय कम्पनी 'होण्डा' की रुद्रपुर (उत्तरांचल) यूनिट के मज़दूर साथियों के शानदार संघर्ष की समीक्षा करते हुए 'बिगुल' के अगस्त 2002 अंक में जो विचार व्यक्त किये गये हैं वे बेहद महत्वपूर्ण हैं। विश्व पूंजी के नये हमलावर दौर में मज़दूरों के संघर्ष की नयी रणनीति क्या हो, यह आज के मज़दूर आन्दोलन का सबसे ज्वलन्त सवाल है। इस सवाल पर, बिगुल, के लेखों-टिप्पणियों में अक्सर छिटपुट ढंग से रोशनी पड़ती रहती है। इस समीक्षा लेख में भी इस पर रोशनी डाली गयी है। एक बात तो तय है कि चलताऊ ट्रेड यूनियनबाजी से अब काम नहीं चलने वाला। अपने-अपने कारखानों के भीतर सिमटी रहने वाली लड़ाई आज सिवाय निराशा के और कुछ नहीं दे सकती। इसलिए आज मज़दूर संघर्षों को व्यापक एकजुटता के आधार पर ही आगे बढ़ाया जा सकता है।

समीक्षा लेख में एक अन्य महत्वपूर्ण बात, जिस पर मेरे ख्याल से 'होण्डा' के साथियों को विशेष रूप से ध्यान देने की जरूरत है, वह यह कि आम मज़दूर आबादी की राजनीतिक चेतना को ऊंचा उठाने के लिए लगातार राजनीतिक प्रचार-शिक्षण चलाते रहने की जरूरत। 'होण्डा' के साथियों को अपने संघर्ष से जो भी हासिल हुआ है वह आम मज़दूर आबादी की चेतना के स्तर के अनुपात में ही हासिल हुआ है और जो भी आगे हासिल होगा वह भी इसी अनुपात में हासिल होगा। इस संदर्भ में मज़दूर वर्ग के महान क्रान्तिकारी शिक्षक और नेता लेनिन के एक लेख **'राजनीति को अध्यापन-शास्त्र के साथ न गड़बड़ाया जाय'** (1905 में लिखित) की कुछ बातें बेहद प्रासंगिक हैं। 'होण्डा' के संघर्षशील साथियों का ध्यान शायद इस पर अवश्य ही गया हो। फिर भी इस पत्र के साथ अगर वे अंश भी छपें तो यह बेहद उपयोगी होगा।

-एक पाठक, नोएडा

राजनीति को अध्यापन-शास्त्र के साथ न गड़बड़ाया जाय

ऐसे काफी सामाजिक-जनवादी हैं जो हर बार, ज्यों ही पूंजीपतियों या सरकार के साथ किसी इक्की-दुक्की लड़ाई में मज़दूरों की हार हो जाती है, त्योंही निराशा के गर्त में डूब जाते हैं और, जनता के ऊपर हमारे प्रभाव की माला की कमी की ओर संकेत करते हुए, मज़दूर आन्दोलन के महान और उदात्त लक्ष्यों के उल्लेख पर भी नाक-मुंह सिकोड़ते हुए उन्हें खारिज कर देते हैं। वे कहते हैं कि इस तरह की चीजों के लिए कोशिश करने वाले हम कौन और क्या हैं? वे कहते हैं कि, जब आम लोगों के मनोभावों तक का पता हमें नहीं है, जबकि उनके साथ घुलने-मिलने में और मेहनतकश जनसमुदायों को जगा कर उठाने में हम असमर्थ हैं, तब इस तरह की बातें बघारना बिल्कुल बेकार है कि क्रान्ति में सामाजिक-जनवादी* हिरावल दस्ते की भूमिका अदा करेंगे। पिछले मई दिवस के अवसर पर सामाजिक-जनवादियों को जो पीछे हटना पड़ा था उसकी वजह से यह भावना और भी अधिक तीव्र हो गयी है।...

...जनता के बीच अपने काम तथा प्रभाव को प्रखर और व्यापक बनाना सदा ही हमारा कर्तव्य है। जो सामाजिक-जनवादी ऐसा नहीं करता वह सामाजिक-जनवादी है ही नहीं। ऐसी किसी भी शाखा (शाखा), दल, या मण्डल को, जो इस लक्ष्य को आगे बढ़ाने के लिए निरन्तर और नियमित रूप से काम नहीं करता, सामाजिक-जनवादी नहीं माना जा सकता। सर्वहारा वर्ग की एक विशिष्ट और स्वतन्त्र पार्टी के रूप में बिल्कुल अलग अस्तित्व रखने में बहुत बड़ी हद तक पार्टी का उद्देश्य ही यह है कि जहां तक संभव हो वहां तक पूरे मज़दूर वर्ग को सामाजिक-जनवादी समझदारी के स्तर तक ऊंचा उठाने के मार्क्सवादी कार्य को हमारे द्वारा निरन्तर और अविचल रूप से किया जाय। राजनीतिक परिस्थितियों के किन्हीं भी परिवर्तनों को, किन्हीं भी राजनीतिक आंधियों को, इस आवश्यक कार्य के मार्ग में हम आड़ा नहीं आने देते। इस कार्य के बिना राजनीतिक-गतिविधियां अनिवार्य रूप से भ्रष्ट होकर तीन-तिकड़म का (खेल का) रूप ले लेंगी, क्योंकि सर्वहारा वर्ग के लिए ये गतिविधियां केवल तभी और उसी हद तक वास्तव में महत्वपूर्ण होती है जब और जिस हद तक कि एक निश्चित वर्ग के जनसमुदायों को जगाकर वे खड़ा कर देती हैं, उसका ध्यान अपनी ओर आकर्षित करती हैं और घटनाओं के निर्माण में सक्रिय तथा प्रमुख रूप से भाग लेने के लिए उसे लामबन्द करती हैं। जैसाकि हमने कहा, यह काम हमेशा जरूरी होता है। हर हार के बाद इस चीज की ओर हमें खास तौर से ध्यान देना चाहिए और उस पर जोर देना चाहिए – क्योंकि इस काम की कमजोरी हमेशा सर्वहारा वर्ग की पराजय का एक कारण होती है। इसी प्रकार प्रत्येक जीत के बाद भी इस काम की तरफ हमें लोगों का ध्यान दिलाना चाहिए, और इसके महत्व पर जोर देना चाहिए – क्योंकि ऐसा न करने से जीत मात्र एक दिखावटी जीत होगी, उस जीत के फलों का प्राप्त होना सुनिश्चित नहीं बनेगा, हमारे अन्तिम लक्ष्य की प्राप्ति के लिए किये जाने वाले महान संघर्ष के सन्दर्भ में उसका वास्तविक महत्व नगण्य होगा और, हो सकता है कि, वह एकदम खिलाफ ही हो (तब विशेष रूप से ऐसा ही होगा जब किसी आंशिक जीत के कारण हमारी सतर्कता ढीली पड़ जाय, गैर भरोसे के मित्रों-सहयोगियों के सम्बन्ध में हमारा अविश्वास भाव घट जाय और दुश्मन पर दोबारा तथा और भी डटकर हमला करने के उचित क्षण को छोड़ने के लिए हम मजबूर हो जायं)। ...

-लेनिन, सम्पूर्ण ग्रन्थावली, खण्ड-8, पृ.452-55

** इस समय तक मज़दूर राजनीति की क्रान्तिकारी धारा को सामाजिक-जनवादी राजनीति कहा जाता था। आज सामाजिक-जनवाद की राजनीति पूंजीवादी राजनीति की एक धारा के रूप में जानी जाती है।*

सफाई मज़दूरों का लम्बे समय से जारी जुझारू संघर्ष

संघर्ष को चुनावी राजनाति का मोहरा बनने से रोकना होगा

(बिगुल संवाददाता)

नोएडा, गौतमबुद्ध नगर। सफाई कर्मचारी परमानेण्ट किये जाने की मांग को लेकर सजग-समझदार नेतृत्व के अभाव को झेलते हुए भी सिर्फ अपनी एकजुटता के दम पर लम्बे समय से जुझारू संघर्ष कर रहे हैं। इसी संघर्ष की कड़ी में पिछले दिनों 18 सितम्बर को नोएडा स्टेडियम से अपनी मांगों के समर्थन में हजार मज़दूरों की रैली निकाली गयी। यह रैली नोएडा सेक्टर छह में प्राधिकरण कार्यालय के सामने सभा में तब्दील हो गई। सभा के बाद सफाईकर्मियों ने अपनी मांगों का एक ज्ञापन मुख्य प्रशासनिक अधिकारी को सौंपा। अधिकारी ने ज्ञापन लेकर वही पुरानी बात दोहरायी कि हम जल्द ही स्वास्थ्य अधिकारी से मिलकर मामले को निपटाने की कोशिश करेंगे। मुख्य प्रशासनिक अधिकारी के इस जवाब पर सफाई मज़दूरों का यह कहना था कि ऐसे आश्वासनों से हमारा कान भर चुका है आप डेट तय कीजिए कि कब हमलोगों को परमानेण्ट कर रहे हैं। इस पर अधिकारी ने यह कहते हुए अपना पल्ला झाड़ लिया कि यह मामला स्वास्थ्य अधिकारी का है।

गौतमबुद्ध नगर जिले के सफाई मज़दूरों (जिसमें नोएडा और ग्रेटर नोएडा के सफाई मजदूर आते हैं) के संघर्ष का नेतृत्व 'इंटक' के हाथों में है। नोएडा के आन्दोलन में नेतृत्व का कोई सहयोग कहीं दिखता नहीं हैं। सफाई मज़दूरों द्वारा इस संवाददाता को बतायी गयी बातों से समझा जा सकता है कि चुनावबाज पार्टियों से जुड़ी हुई ये ट्रेड यूनियनें मज़दूरों के पूरे जुझारू आन्दोलन की धार को कुन्द कर दुअन्नी-चवन्नी तक के संघर्ष को भी करने में असमर्थ हो चुकी हैं और मज़दूरों का सिर्फ चुनाव और अपनी सत्ता की राजनीति के लिए उपयोग करती हैं।

मज़दूरों ने बताया कि 'इंटक' के नेतृत्व की मज़दूरों को खास हिदायत है कि आप अपनी किसी भी तरह की मांग को लेकर दिल्ली में प्रदर्शन नहीं करेंगे। इसकी वजह समझी जा सकती है कि ऐसा क्यों है? ऐसा सिर्फ इसलिए है कि दिल्ली में कांग्रेस की सरकार है। 'इंटक' उन्हीं की ट्रेड यूनियन है इसलिए इंटक वालों को इस बात का डर सताता रहता है कि कहीं 'रंगे सियार की असलियत' मज़दूरों को पता न चल जाय। मज़दूरों को कहीं यह न समझ में आ जाय कि सवाल मायावती और शीला की सरकार का नहीं है बल्कि असली सवाल तो इन 'भेड़ियों की बिरादरी' का है। क्योंकि भेड़ियों को इस बात से मतलब नहीं होता है कि ये भेड़ें

(मतलब मज़दूर) पूरब की हैं या पश्चिम की, दिल्ली की हैं या नोएडा की। उनको सिर्फ एक बात से मतलब होता है कि मज़दूरों की बची हुई हड्डी को कैसे होशियारी के साथ नोचा जाये – रंग बदल-बदल कर।

वैसे सफाई मज़दूर अपने संघर्षों के अनुभव से धीरे-धीरे इस बात को बड़े साफ तौर पर समझने भी लगे हैं।

नोएडा में सफाई-मज़दूरों की संख्या रिकार्ड में बारह सौ साठ दर्ज है। इसके अलावा सीवर में काम करने वाले साढ़े तीन सौ मज़दूर हैं। सच्चाई ये है कि काम पर सिर्फ नौ सौ साठ सफाई मज़दूर हैं। तनख्वाह बारह सौ साठ की आती है, मिलता है नौ सौ साठ। बाकी तीन सौ मज़दूरों की तनख्वाह स्वास्थ्य अधिकारी, सेनिटरी इन्स्पेक्टर व सरकारी सुपरवाइजर की जेब में जाती है। इनका पेट यहीं नहीं भरता। ये और भी मुंह मारते हैं – जैसे अगर कोई मज़दूर किसी दिन काम पर नहीं गया तो उसकी तनख्वाह उस दिन कट जाती है। जबकि मज़दूरों का कहना है कि तनख्वाह असल में कटती नहीं है। इस तरह यह पैसा भी उपर्युक्त अधिकारियों की जेबों में ही जाता है।

सीवर सफाई का काम करने वाले मज़दूरों की स्थिति तो और भी नारकीय है। पिछले आठ सितम्बर को एक सफाई मज़दूर ग्रेटर नोएडा के सेक्टर बीटा स्थित समरविला स्कूल के पास सीवर की सफाई के लिए मेनहोल में प्रवेश किया और मर गया।

वैसे तो प्राधिकरण मुंहजबानी कह देता है कि सीवर के मज़दूरों के लिए आक्सीजन मास्क देते हैं। लेकिन तथ्य अपने आप गवाही देते हैं कि आक्सीजन मास्क मिलता है या मरने की खुली छूट। सीवर में घुसने के लिए एक गैमबूट मिलता है जिसे पहनकर कोई भी मज़दूर सीवर में नहीं घुसता है, क्योंकि उसे पहनकर घुसने पर सुरक्षा के बजाय अतिरिक्त खतरा पैदा हो जाता है। एक सफाई मज़दूर ने अपना पैर दिखाते हुए बताया कि यह गैमबूट का कमाल है। उसका पैर शीशे से कट गया था। वह डंडे के सहारे चल रहा था।

गैमबूट की जो बनावट है वह मकान बनाने वाले मज़दूरों के जूतों जैसी है। उसको पहनकर जाने पर मलिया (सीवर का कचरा) उसी में घुस जाता है, साथ ही साथ शीशा भी। अत: कोई मज़दूर उसे पहनकर सीवर में नहीं प्रवेश करता है।

वहीं पर खड़ा एक मज़दूर खीझते हुए बोला – "ये सब तो लिखिए ही इसके साथ यह भी लिखिये कि आखिर क्यों सबकुछ की सफाई तो हमलोग करते हैं, पर समाज में लोग हमीं लोगों से नाक-भौं सिकोड़ते हैं। यह किस संविधान में लिखा है। इसके लिए सरकार काहे नहीं कुछ करती है। अब आप से मैं बताऊं कि जब हमलोग वर्दी पहनकर बस में जाते हैं तो लोग नाक-भौं सिकोड़ने लगते हैं। हम और सब अधिकार के लिए तो लड़ते हैं, लेकिन इसके लिए कब लड़ेंगे कि सफाई मज़दूरों को इंसान का दर्जा दिया जाय।"

सरकार से और प्राधिकरण से सफाई मज़दूरों को कितनी श्रम सुविधाएं मिली हैं उसका अंदाजा स्वास्थ्य अधिकारी के इस वक्तव्य से लगाया जा सकता है, जिसमें वे कहते हैं कि सभी सफाई कर्मचारी सप्लाई आर्डर के तहत काम करते हैं। अत: परमानेण्ट का सवाल ही नहीं उठता है। सप्लाई आर्डर का मतलब होता है ठेकेदार के तहत काम करना। लगभग पन्द्रह-सोलह साल से काम कर रहे मज़दूरों को आज तक परमानेण्ट नहीं किया गया है। नाममात्र की भी जो सुविधाएं कभी-कभार सफाई मज़दूरों के लिए आती हैं उसे बीच से अधिकारी ही लपक लेते हैं।

1998 के संघर्षों में आगे रहे लगभग पैंतालिस मज़दूरों को बाहर कर दिया गया, जिनको कई एक आश्वासनों के बावजूद काम पर वापस नहीं लिया गया है।

कुछ इसी तरह की मांगों को लेकर सभी मज़दूरों को परमानेण्ट किया जाय, श्रम सुविधाओं को लागू किया जाय, निकाले गये मज़दूरों को काम पर वापस लिया जाय, सफाई-मज़दूर बिना थके-हारे लगातार संघर्षरत हैं। मज़दूरों को अपने संघर्षों के अनुभव से एक बात समझ में आयी कि हम परमानेण्ट नहीं हो पा रहे हैं तो उन्होंने यह मांग रखी कि ठीक है ठेकेदारी के तहत ही काम लिया जाय, परन्तु ठेकेदारी के तहत जो श्रम सुविधाएं हैं उसको तो दिया जाय। लेकिन अफसर शाह-सरकार-पुलिस-ठेकेदारों का गिरोह इसे भी देने के लिए तैयार नहीं है।

एक तरफ तो ये हालत है कि सरकार-व्यवस्था, सभी दलाद ट्रेड यूनियनें ठेकेदारों के साथ खड़ी हो चुकी हैं, पर दूसरी विडम्बना इससे भी बड़ी है जिसकी वजह से खासकर मज़दूरों के दुश्मन फल-फूल रहे हैं। दरअसल नेतृत्व के ऊपर का तबका तो बहुत पहले से ही मज़दूरों की पीठ में छुरा भोंकता रहा है। दूसरी तरफ, जो जिला स्तर का नेतृत्व है (जो सही मायने में मज़दूरों के हितों के लिए संघर्ष कर रहा है), उसकी कमजोरी यह है कि वह अनुभवहीन और अदूरद्रष्टा है।

इस अनुभवहीनता के बावजूद आज के इस ठंडे समय में भी सफाई मज़दूर संघर्ष कर रहे हैं यह अपने आप में अच्छी बात है। कोई भी हल संघर्ष से ही निकलेगा। लेकिन लड़ने के लिए, दुश्मन के सामने खुद मजबूत होना ही काफी नहीं होता है, बल्कि दुश्मन की ताकत और उसकी कमजोरी जानना भी बहुत जरूरी होता है।

अत: यह बात तो दावे के साथ कही जा सकती है कि नोएडा के सफाई मज़दूर फौलादी एकजुटता का प्रदर्शन कर रहे हैं। अगर जरूरत है तो सिर्फ इस बात की, कि अपने संघर्षों के सही रास्तों को तलाशा जाय। नोएडा के मज़दूर आन्दोलन से अपने आप को जोड़ा जाय, नये-नये संघर्षों के तरीके खोज निकाले जायें और भेड़ियों के असली चेहरों को बेनकाब करके सिर्फ मज़दूरों के दम पर मज़दूर बिरादरी से समझदार, जुझारू नेतृत्व पैदा किया जाय। ऐसा नेतृत्व जो हमारी लड़ाई का दूरद्रष्टा हो, जो सिर्फ हमारी छोटी-मोटी सुविधाओं या पैसे की ही लड़ाई न लड़े, बल्कि एक इज्जत की जिन्दगी दिलाने के लिए संघर्ष कर सके और इस नारे को बुलन्द करे कि अगर काम हम करेंगे तो राजकाज भी हमारा होगा और 'सारी सत्ता मेहनतकश की' होगी।

सुब्रोज लि. नोएडा में छंटनी-तालाबंदी-बर्खास्तगी का दौर
सूझ-बूझ के साथ संघर्ष की रणनीति बनाना जरूरी

(बिगुल संवाददाता)

नोएडा फेज-2 स्थित मारुति और टेल्को के लिए एयरकॉडिशनर बनाने वाली कम्पनी सुब्रोज लिमिटेड के प्रबंधन ने शासन-प्रशासन के गठजोड़ और सरकार से मिली लूट की खुली छूट की ताकत के दम पर तिलम्बन-छंटनी-बर्खास्तगी की प्रक्रिया शुरू कर दी है। नोएडा फेज-2 में सुब्रोज की तीन इकाइयां हैं जिनमें लगभग हजार मजदूर काम करते हैं। इनमें तीन सौ मज़दूर 'ट्रेनी' (प्रशिक्षु) के रूप में काम करते हैं। ये तीन सौ मजदूर तीन महीने के लिए रखे जाते हैं जिनको बारह सौ- अट्ठारह सौ रु. तक देकर अट्ठारह-अट्ठारह घंटे खटाया जाता है। इनको किसी तरह की कोई श्रम सुविधा नहीं मिलती है। बाकी जो सात सौ मजदूर हैं वे परमानेण्ट कहे जाते हैं। कंपनी का मालिकाना सूरी बंधुओं का है जो भारत होटल्स से सम्बद्ध है।

हुआ यूं कि यूनियन ने 31-3-2002 को पिछला समझौता समाप्ति के बाद नया मांगपत्रक पेश किया। परन्तु प्रबंधन की इसपर कोई खास सुगबुगाहट नहीं दिखी। फिर भी यूनियन ने प्रबंधन के उदासीन रवैये के बावजूद नये समझौते को लागू किये जाने का प्रयास किया, परन्तु प्रबंधन नया समझौता न करने की जिद पर अड़ा रहा। अत: समझौता तो नहीं हुआ, हां प्रबंधन ने इतना जरूर किया कि यूनियन के महासचिव समेत और तीन पदाधिकारियों को बर्खास्त कर दिया। साथ ही साथ यूनियन के साथ जुड़े और अपने अधिकारों के संघर्ष में आगे रहने वाले दर्जन भर मजदूरों को तिलम्बित कर दिया।

पूंजी की चाहत में मज़दूरों के खून का कतरा-कतरा चूसने के लिए तैयार बैठे नरपिशाच-मालिकान की इतने से तृप्ति नहीं हुई तो, उसने मजदूरों के जून-जुलाई माह के वेतन से नौ दिन का तथा सितम्बर के वेतन में से सात दिन की कटौती कर दी।

मालिकान-प्रबंधन के इस तानाशाहीपूर्ण मज़दूर हित विरोधी रवैये के खिलाफ मज़दूरों ने कमर कसना शुरू कर दिया है। उनको लगने लगा है कि सिर्फ डी. एल. सी., डी. एम. कानपुर श्रम सचिव के यहां कागजों के साथ चक्कर लगाने से बहुत कुछ भला होने वाला नहीं है। बल्कि हमें अब जमीनी संघर्ष के लिए भी उतरना पड़ेगा।

पिछले इक्कीस सितम्बर को मज़दूरों की आम सभा हुई थी जिसमें प्रबंधन के इस रवैये और इससे निपटने के रास्तों पर बातचीत हुई। इसके बाद हुई एक मीटिंग में मज़दूरों ने निर्णय लिया कि शासन-प्रशासन-सरकार-मालिकान-गुण्डा गठजोड़ व मज़दूर हितों की अनदेखी किये जाने के खिलाफ नवम्बर माह में शुरू होने वाले शीतकालीन सत्र के दूसरे दिन संसद के सामने प्रदर्शन करेंगे। सुब्रोज के मज़दूर साथी जमीनी संघर्ष पर उतर चुके हैं और पूरी उम्मीद है कि वे जुझारू ढंग से अपने संघर्ष को आगे बढ़ायेंगे।

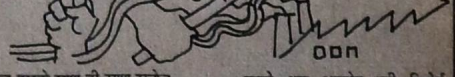

लेकिन इसके साथ ही साथ सुब्रोज के संघर्षशील साथियों को नोएडा के मज़दूर आन्दोलन के अनुभवों, देश में मज़दूर आन्दोलन की हालत और सरकार की मजदूर विरोधी नीतियों के आइने में अपने आन्दोलन को तराशना पड़ेगा। बात यहीं खत्म नही होती बल्कि इससे आगे बढ़कर मज़दूर हितों की दुकानदारी करने वाली केन्द्रीय ट्रेड यूनियनों के असली चरित्र को भी समझना होगा। नहीं तो इस आन्दोलन का भी वही हश्र हो सकता है जो फीनिक्स, फ्लेक्स, शाही एक्सपोर्ट का हुआ। मजदूर साथियों को दिमाग मे इस बात को गहराई तक बैठाना होगा, कि सभी केन्द्रीय ट्रेड यूनियनें मज़दूर हितों की दलाली करती हैं और इन नेताओं का बरतन-बासन इसी से चलता है। उसकी वजह यह है कि ये सभी ट्रेड यूनियनें किसी न किसी चुनावबाज पार्टी से जुड़ी हुई हैं। सभी चुनावबाज पार्टियों के नेता संसद-विधानसभाओं में बैठते हैं और जो काले कानून आज लागू हो रहे हैं उनको वहीं से ये नेता पूंजीपतियों के हितों में पास करते हैं।

दूसरे श्रम आयोग की रिपोर्ट लागू होने के बाद से हम मजदूरों को जो अधिकार मिले हुए थे वे भी छीन लिए जायेंगे। हमारी हालत 'यूज एण्ड थ्रो' की हो जाएगी, मालिकों को छंटनी की खुली छूट मिलेगी। जिसके खिलाफ कोर्ट-कचहरी में भी नहीं जा सकते। अत: साथियों को इस बात पर भी गम्भीरता से सोचना होगा। अपने संघर्ष की रणनीति बनानी होगी।

छंटनी-तालाबन्दी-बर्खास्तगी का दौर केवल सुब्रोज में ही नहीं चल रहा है। पूरे देश-दुनिया में पूंजी की हवस में चौराये पूंजीपति स्थायी श्रमिकों को निकालकर ठेका-पीसरेट-दिहाड़ी पर काम करा रहे हैं। अत: अपने आन्दोलन को देश-दुनिया के मज़दूर आन्दोलन से जोड़ना होगा। बहरहाल, यह तो आगे की बात है, लेकिन इतना तो करना ही होगा कि नोएडा के मज़दूर आन्दोलन से अपने आन्दोलन को जोड़कर देखा जाए, तभी जाकर कहीं अपनी इन बुनियादी मांगों को भी मुकम्मिल ढंग से पाया जा सकता है।

पश्चिम बंगाल में आधी रात की दस्तकों का नया दौर
फर्जी गिरफ्तारियां, आतंककारी छापेमारी, हिरासत में बर्बर यातनाएं

पश्चिम बंगाल में आधी रात को पुलिस के बूटों की धमक फिर सुनाई देने लगी हैं। सत्तर के दशक के आतंकराज की आहटें सुनाई पड़ रही हैं। नक्सलवाद से निपटने के नाम पर पुलिसिया अभियान जारी है। नक्सलवाद विरोधी सेल हरकत में आ गये हैं। नक्सली होने के आरोप में बेगुनाहों को जेल की सीखचों के पीछे ढकेला जा रहा है। मानवाधिकारों की धज्जियां उड़ाते हुए पुलिस के बर्बर दमन का शिकार आम लोग हो रहे हैं। यह सब कुछ हो रहा है – जनतंत्र की स्वयंभू रक्षक मा. क.पा. के नेतृत्व में – मेहनतकशों के स्वयंभू रहनुमा वाममोर्चे के राज में। संशोधनवादी अपना असली रूप दिखा रहे हैं। नकली वामपंथियों के ढोंगी, पाखंडी चेहरे की असलियत सामने आ रही है। संशोधनवादी पूंजीवादी व्यवस्था की रक्षा और आम जनता के दमन में कितने दक्ष होते हैं, यह हकीकत एक बार फिर सामने आ रही है।

प.बंगाल सरकार आर्थिक तौर पर दिवालिया होने के कगार पर है। बढ़ती बेरोजगारी, छंटनी-तालाबंदी के चलते लगातार जन असंतोष पनप रहा है। मजदूर सड़कों पर ढकेले जा रहे हैं, गरीब बस्तियां उजाड़ी जा रही हैं। सत्ताधारी मोर्चे की पिछलग्गू ट्रेड यूनियनों की दलाली और गद्दारियां मजदूरों को नर्क के गर्त में धकेल रही हैं। दिल्ली में बैठकर निजीकरण-उदारीकरण का विरोध करने वाला वाम मोर्चा पं बंगाल में सत्ता सुख भोगते हुए लगातार जनविरोधी नीतियां लागू कर रहा है। मुनाफाखोरों की सेवा में नये कीर्तिमान

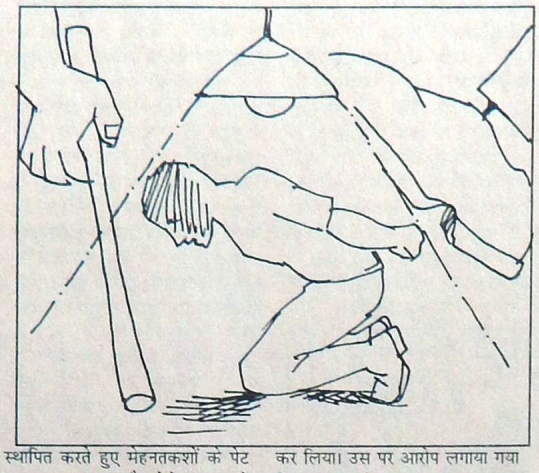

स्थापित करते हुए मेहनतकशों के पेट पर लात मार रहा है। ऐसे हालात में स्वाभाविक ही है विरोध के स्वर पनपेंगे। अन्याय के खिलाफ विद्रोह की चिंगारी भड़केगी ही। इसी से निपटने के लिए पुलिसिया दमन तंत्र को मजबूत किया जा रहा है। आतंक के नमूने पेश किये जा रहे हैं।

पं बंगाल सरकार का अब तक सैकड़ों आम लोगों पर पुलिसिया कहर टूट चुका है। पूंजीवादी मीडिया भी इन पूंजीवाद के वफादार लाल पताकाधारियों के काले कारनामों की कई खबरें दे चुका है। एक खबर के अनुसार, अगस्त मध्य में बेहरामपुर के बोचादंगा गांव में बड़ी संख्या में पुलिस ने धावा बोला। पुलिस ने आठवीं कक्षा में पढ़ने वाले एक छात्र को गिरफ्तार कर लिया। उस पर आरोप लगाया गया कि वह प. बंगाल सरकार का तख्ता पलटने की साजिश रच रहा था। इसी आरोप में जूट मिल के एक मज़दूर की बेटी शांपा को गिरफ्तार किया गया। शांपा कोलकाता के एक कालेज में पढ़ती है। इसके साथ ही तीन गरीब किसानों को पकड़ लिया गया। मुर्शिदाबाद का पुलिस अधीक्षक इनको गिरफ्तारी पर कहता है "इन लोगों का मकसद राज्य सत्ता पर काबिज होना है। ... यह लोग अपनी अलग व्यवस्था और अलग न्यायिक तंत्र बनाने की कोशिश कर रहे हैं।" अन्याय और जुल्म पर टिकी सत्ता को हमेशा ही अपनी गरीब जनता दुश्मन नजर आती है। अत्याचारी शासकों की यह भाषा यह पुलिस अधिकारी ही नहीं, बल्कि प. बंगाल का मुख्यमंत्री भी बोल रहा है।

नक्सली या नक्सली समर्थक होने के संदेह में पुलिस हिरासत में ढाए गये जुल्मों की भयावहता जालिम शासकों के अत्याचारों को मात कर रही है। आबकारी अधिकारी अभिजीत सिन्हा को कोलकाता पुलिस आधी रात को बिना किसी वारंट के घसीटते हुए उठा ले गयी। पुलिस के अनुसार किसी पीपुल्स वार के कार्यकर्ता की डायरी में उनका फोन नं. और पता मिला था। हिरासत में 'थर्ड डिग्री' और प्रताड़ना को बर्दाश्त न कर पाने के कारण अभिजीत ने गिरफ्तारी के तीसरे दिन 7 जुलाई को आत्महत्या कर ली।

साइंस कालेज, कोलकाता के लोकप्रिय अध्यापक कौशिक गांगुली को पीपुल्स वार ग्रुप के 'प्लानर' होने के आरोप में गिरफ्तार किया गया। उनके गिरफ्तार होने पर कोलकाता के सैकड़ों शिक्षकों, छात्रों, जाने-माने संस्कृतिकर्मियों ने प्रदर्शन किया। कौशिक पुलिस हिरासत में दी गई यातनाओं को देखकर मेदिनीपुर के मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट ने मेडिकल रपट खारिज कर फारेंसिक रपट तलब की। इस पुलिसिया दमन की समाज के सभी कोनों से निन्दा हो रही है लेकिन मुख्यमंत्री विधानसभा में ऐलान करते हैं कि सख्त कार्रवाई की नीति से सरकार एक कदम भी पीछे नहीं हटेगी। पुलिसिया कार्रवाइयों की गुण्डई और बेशर्मी से शरमाकर वाममोर्चे के दो वरिष्ठ मंत्रियों भाकपा के नंदगोपाल आचार्य और आर.एस.पी. के अमर चौधरी तक को पुलिसिया जुल्म की तीव्र निंदा करनी पड़ी। फारवर्ड ब्लाक के नेताओं को कहना पड़ा, "पुलिस बर्बरता भयावह है।"

पश्चिम बंगाल में आतंकराज के इस नये दौर में आज जो हो रहा है उससे संसदीय वामपन्थियों के बारे में अब भी भ्रमों के शिकार मेहनतकशों और तमाम मध्यमवर्गीय बुद्धिजीवियों की आंखें खुल जानी चाहिए। ये हरी घास में छुपने वाले सांपों से भी ज्यादा खतरनाक होते हैं। जनवाद और मेहनतकश अवाम के हितों की जुगाली करते हुए दरअसल ये वामपन्थी संशोध नवादी लगातार मेहनतकशों पर छुप कर हमला करते रहते हैं। असल में ये पूंजीवाद के चाकर होते हैं और अगर पूंजी के हितों को कोई वास्तविक चुनौती देने के लिए सामने आ जाता है तो ये अपने असली रूप में सामने आ जाते हैं। जैसा कि आज प. बंगाल में हो रहा है। लेकिन दुनिया के तमाम जुल्मी शासकों की तरह भेड़ की खाल ओढ़े ये भेड़िये इतिहास का यह सबक भूल जाते हैं कि दमन की बर्बर से बर्बर कार्रवाइयां सच्चाई और इंसाफ की आवाजों का गला नहीं घोंट सकती।

(पेज 1 से आगे)

संघ परिवार का नया फैंरापलट ...

नीतियों पर फासिस्टों के बीच एक आम एकता होती है। संघ परिवार के बीच भी भूमण्डलीकरण की घोर पूंजीपरस्त नीतियों के सवाल पर यानी निजीकरण-उदारीकरण के समर्थन के सवाल पर पूरी एकता है। विनिवेश विरोध तो अगले चुनाव के मद्देनजर रचा गया एक स्वांग भर है और यही मुख्य पहलू है।

अगर ऐसा नहीं होता तो अगले चुनावों के ठीक पहले ही संघ परिवार की स्वदेशी-मण्डली को विनिवेश और विदेशी पूंजी के बारे में ब्रह्मज्ञान नहीं प्राप्त हो जाता। देश में उदारीकरण-निजीकरण की नीतियां 1991 से लागू हो रही हैं। क्या भाजपा नेता भूल गये कि जब नरसिंहराव-मनमोहन सिंह की सरकार ने इन नीतियों का श्रीगणेश किया था तो वे किलकारी मारते हुए कह रहे थे कि कांग्रेसियों ने उनका एजेण्डा चुरा लिया है। भाजपायी उस समय सच्चाई बयान कर रहे थे। खुले बाजार वाले नग्न लुटेरे पूंजीवाद की वकालत तो ये जनसंघ के जमाने से करते आ रहे हैं। अमेरिकापरस्ती भी इनकी पुरानी नीति रही है। नरसिंहराव-मनमोहन सिंह के शासन में विपक्ष में रहकर भाजपा ने हर नीतिगत प्रश्न पर खुलकर कांग्रेस का साथ दिया था। मौजूदा वाजपेयी सरकार के बनने के बाद देशी-विदेशी पूंजीपतियों के हितों को ध्यान में रखते हुए जब कई अहम फैसले लिए गये तब भी 'स्वदेशी मण्डली' चुप थी। लेकिन जैसे-जैसे अगले चुनाव की तारीख नजदीक आने लगी वैसे-वैसे अब ऊंची आवाज में 'स्वदेशी' का सुर सुनायी देने लगा है। इसलिए, इस बारे में मेहनतकश अवाम को किसी भ्रम में पड़ने की जरूरत नहीं है।

बिल्कुल साफ है कि हिन्दुत्व की फुफकार और स्वदेशी के राग-मल्हार में एक चतुराई भरी चुनावी जुगलबन्दी है। गुजरात में हिन्दुत्व के रणबांकुरों ने जो हत्याकाण्ड रचा है उसकी तुलना जर्मनी में नात्सीवादियों द्वारा यहूदियों पर किये गये अत्याचारों से ही की जा सकती है। आज के समय में अगर कोई तुलना की जा सकती है तो उद्दण्ड एरियल शेरोन की अगुवाई में फिलिस्तीनी अवाम पर बरपा हो रहे कहर से की जा सकती है। अशोक सिंघल और प्रवीण तोगड़िया जिस भाषा और अन्दाज में बयानबाजी कर रहे हैं वह नाजी की भाषा है, दुनिया के स्वयंभू थानेदार बने जार्ज बुश और हेंकड़ीबाज शैरोन की भाषा है। यही कारण है कि प्रवीण तोगड़िया मुसलमान आबादी के खिलाफ नफरत का जहर उगलते हुए गर्व से कहता है कि देश को बुश और शैरोन जैसा नेता चाहिए। लेकिन फासीवादी उद्धतता की यह भाषा बोलने वालों और स्वदेशी-स्वदेशी चिल्लाने वाले संघ परिवार के दूसरे सदस्यों की जमात एक ही है, हमें यह कभी न भूलना होगा।

संघ परिवार के इस नये चुनावी पैंतरापलट और हिन्दू फासीवादी उद्धतता की इस पृष्ठभूमि में मेहनतकश अवाम के अगुवा दस्तों को अपनी तैयारियों को ठोस रूप देने का काम तेज कर देना होगा। इसके लिए जरूरी है कि हमारी रणनीति भी धारदार और व्यावहारिक होनी चाहिए जिससे हिन्दू साम्प्रदायिक फासिस्टों के खिलाफ फैसलाकुन जंग की वास्तविक तैयारियां हो सकें।

हमें अपने रास्ते की बाधाओं और चुनौतियों को भी पहचानना होगा। आज संसदीय वाममार्गी देश के भीतर फासीवाद विरोधी संघर्ष की वास्तविक तैयारियों के रास्ते की बाधाएं बनकर खड़े हैं। दरअसल पिछली शताब्दी के चौथे दशक में यूरोप में (खासकर इटली और जर्मनी में) जो कुछ हुआ था उससे ये कोई सबक नहीं ले रहे हैं। ये अभी भी यह नहीं समझ पा रहे हैं कि फासीवाद का मुकाबला संसदीय दायरे की चुनावी मोर्चाबन्दियों से नहीं किया जा सकता। दरअसल आज इनके भीतर यह माद्दा ही नहीं रह गया है कि अनुष्ठानों या रस्मी विरोध की कार्रवाइयों का रास्ता छोड़कर वास्तविक जमीनी संघर्ष के रास्ते पर चल पड़ें। अभी भी संसद में "गम्भीर" बहसें करके ये सन्तोष की डकार ले रहे हैं। इनसे जुड़े सेक्युलर बुद्धिजीवी बन्द कमरे के सेमिनारों में अंग्रेजी भाषा में गुरुगम्भीर शोधपत्रों का वाचन करने या मंडी हाउस पर धरना देकर फासीवाद विरोध की ड्यूटी बजाने के बजाय अगर सीधे मेहनतकश आबादी के बीच जाकर उनकी भाषा में प्रचार-प्रसार करते तो ज्यादा कारगर होता। काश ये समझ पाते कि इनके फासीवाद विरोध का अनुष्ठान फासीवादी ताकतों को ही मजबूत बनाता है। हिन्दुत्ववादी फासीवादी ताकतों को ये आनुष्ठानिक कार्रवाइयां जनता के बीच यह प्रचार करने का मौका मुहैया कराती हैं कि 'देखो-देखो, ये गिटपिट अंग्रेजी बोलने वाले, अपनी भाषा और जमीन से कटे ये भद्र नागरिक सेकुलर होने का नाटक कर रहे हैं, जहां तक संसदमार्गी वाम पार्टियों की बात है तो आज ये असली मेहनतकश आबादी के बीच साम्प्रदायिक-फासीवाद विरोधी प्रचार-आन्दोलन कर ही नहीं सकते क्योंकि असल में ये तो मजदूरों के बीच के ऊपरी कुलीन तबके की नुमाइन्दगी कर रहे हैं। इनका असली आधार तो आज सिर्फ 'सफेद कालर वाले' मजदूरों के बीच ही रह गया है। अब, नीले कालर वाले, मजदूरों के बीच जाने का ये माद्दा ही खो बैठे हैं। इसलिए इनसे कोई भी उम्मीद बेकार है। काश नरमपन्थी सेक्युलर किस्म के लोग फासिज्म की ऐतिहासिक सच्चाई को स्वीकार कर जमीनी संघर्षों से जुड़ने की जरूरत महसूस कर पाते।

सबसे अधिक चिन्ता और चुनौती की बात तो मेहनतकश अवाम के क्रान्तिकारी अगुवा दस्तों का बिखराव है जिससे मेहनतकश अवाम की क्रान्तिकारी ऊर्जा को फासीवाद विरोधी प्रचण्ड शक्ति में बदलना अभी तक मुमकिन नहीं हो पा रहा है। साथ ही यह और भी चिन्ता की बात है कि इस दिशा में साझा प्रयासों के नाम पर जो पहलकदमियां ली जा रही हैं उनसे बहुत व्यावहारिक ढंग से वास्तविक तैयारियों के काम को अंजाम नहीं दिया जा सकता। हमें साम्प्रदायिक फासीवाद विरोधी संघर्ष की वास्तविक तैयारियों के तात्कालिक और दूरगामी कामों को बहुत व्यावहारिक ढंग से एक-दूसरे के साथ जोड़ने की दिशा में ठोस कार्रवाइयों के रास्ते पर चलना होगा।

फौरी तौर पर साम्प्रदायिक फासीवाद के साझा विरोध के नाम पर हड़बड़ी में, अव्यावहारिक ढंग से कोई मोर्चा खड़ा कर लेने की कोशिशों से हमें बचना होगा। हमें पहले मेहनतकश अवाम की क्रान्तिकारी ताकतों के बीच साम्प्रदायिक फासीवाद के खिलाफ संघर्ष की रणनीति-रणकौशल एवं सही पहुंच-पद्धति के सवाल पर साझा राय कायम करने की कोशिश करनी होगी। फिर रणनीति-रणकौशल एवं सही पहुंच-पद्धति को एका के आधार पर समाज की जनवादी-सेक्युलर ताकतों को गोलबन्द करने की कोशिश करनी होगी। अगर हमारा प्रयास हर प्रकार की संकीर्णता से मुक्त होकर व्यावहारिक एवं ठोस रूप में आगे बढ़ेगा तो तमाम सच्चे सेक्युलर बुद्धिजीवी, इस प्रकार की किसी ठोस साझा पहलकदमी के साथ निश्चित रूप से जुटने लगेंगे।

लेकिन, इसके साथ ही साझा मोर्चे के इस फौरी कार्यभार का हमारे दूरगामी कार्यभारों से ठोस एवं व्यावहारिक जुड़ाव होना चाहिए। दुहराने की जरूरत नहीं फासीवाद के ताबूत में आखिरी कीलें तभी ठोंकी जा सकती हैं जब पूंजी के राज को उखाड़ फेंका जाये। दुनिया में जब तक पूंजीवाद-साम्राज्यवाद कायम रहेगा, तब तक उसके संकटों की कोख से फासीवाद का राक्षस जन्म लेता रहेगा। इसलिए फासीवाद विरोधी संघर्ष को मेहनतकशों के वर्ग संघर्ष का हिस्सा बनकर चलना होगा। इस दूरगामी कार्यभार की दिशा में ही हमारा फौरी कार्यभार केन्द्रित होना चाहिए। बहुत से लोगों के लिए यह बात जानी-समझी बात का दुहराव मात्र लग सकता है, लेकिन कभी-कभी जानी-समझी सच्चाइयों को भी दुहराने की जरूरत होती है। खासकर ऐसे समय में, जबकि अक्सर देखने में आता है कि जब अपनी चिन्ताओं को व्यावहारिक कार्यभारों के रूप में ढालने

(पेज 10 पर जारी)

विशेष सामग्री

(उन्नीसवीं किश्त)

पार्टी की बुनियादी समझदारी

अध्याय -7

पार्टी में जनवादी केन्द्रीयता

(पिछले अंक से आगे)

पार्टी का संविधान कहता है: "पार्टी का सांगठनिक सिद्धान्त जनवादी केन्द्रीयता है।" जनवादी केंद्रीयता को सचेतन तौर पर लागू करना पार्टी की एकता सुनिश्चित करने, इसके केन्द्रीकृत नेतृत्व को मजबूत करने, इसकी जुझारू क्षमता को बढ़ाने और पार्टी जीवन को शक्ति देने के लिए, बेहद महत्वपूर्ण है। सभी कम्युनिस्टों को जनवादी केन्द्रीयता के अर्थ और उसकी भूमिका पूरी तरह समझना चाहिए और उसे लागू करने के मामले में अपनी चेतना का स्तर ऊंचा उठाना चाहिए।

जनवादी केन्द्रीयता पार्टी का सांगठनिक सिद्धांत है

जनवादी केन्द्रीयता पार्टी का सांगठनिक सिद्धान्त है। हमारी पार्टी की सभी गतिविधियां जनवादी केन्द्रीयता के सिद्धान्त के मुताबिक ही चलाई जाती हैं। जनवादी केन्द्रीयता का अर्थ क्या होता है? पार्टी में जनवादी केन्द्रीयता का अर्थ होता है जनवाद पर आधारित केन्द्रीकरण और केन्द्रीकृत नेतृत्व के अन्तर्गत लागू किया जाने वाला जनवाद – यह एक साथ जनवादी भी है और केन्द्रीकृत भी। जनवादी केन्द्रीयता विपरीत तत्वों की एकता का प्रतीक है; एक ओर जहां ये दोनों शब्द एक दूसरे के विपरीत हैं, वहीं उनमें एकता भी है। जनवाद के उच्च स्तर के बिना केन्द्रीयता का उच्च स्तर नहीं हो सकता, लेकिन केन्द्रीयता के उच्च स्तर के बिना, जनवाद का भी उच्च स्तर नहीं हो सकता। अध्यक्ष माओ ने बताया है: "जनवाद और केन्द्रीयता, स्वतंत्रता और अनुशासन की एकता ही हमारी जनवादी केन्द्रीयता का निर्माण करते हैं।" (माओ त्से-तुङ, संकलित रचनाएं, "जनता के बीच अन्तरविरोधों को सही ढंग से हल करने के बारे में", पृ. 438, अंग्रेजी संस्करण)

जब हम जनवाद पर आधारित केन्द्रीकरण की बात करते हैं, तो हमारा मतलब होता है कि हर स्तर पर पार्टी के नेतृत्वकारी निकायों को पार्टी के सभी सदस्यों द्वारा क्रान्तिकारी उद्देश्य के लिए उत्तराधिकारियों को प्रशिक्षित करने की जरूरत, और युवा, अधेड़ और बुजुर्ग के थ्री-इन-वन काम्बीनेशन के सिद्धान्त को ध्यान में रखकर किए जाने वाले जनवादी विचार-विमर्श के बाद चुना जाना चाहिए। इसका यह अर्थ होता है कि पार्टी के सभी फैसले नेतृत्वकारी निकायों द्वारा जनता की रायों के केन्द्रीकरण के बाद ही लिये जाने चाहिए। जनवाद पर आधारित केन्द्रीकरण का मतलब यह भी होता है कि चूंकि पार्टी के नेतृत्वकारी निकायों की शक्ति उन्हें पार्टी सदस्यों की सभाओं द्वारा या उनके प्रतिनिधियों द्वारा प्रदान की जाती है, इसलिए ये नेतृत्वकारी निकाय पार्टी के केन्द्रीकृत नेतृत्व को लागू करने और पार्टी के मामलों को निपटाने में पार्टी के सभी सदस्यों की नुमाइन्दगी कर सकते हैं। और जनवाद-आधारित केन्द्रीयता से तात्पर्य यह भी होता है कि संपूर्ण पार्टी एक एकीकृत अनुशासन के अन्तर्गत आनी चाहिए – व्यक्ति संगठन के मातहत होता है, अल्पमत बहुमत के मातहत होता है, नीचे की कमेटियां ऊपर की कमेटियों के अधीन होती हैं, और पूरी पार्टी केन्द्रीय कमेटी के अधीन होती है। पार्टी के सदस्यों को पार्टी के संगठनों के निर्णयों और निर्देशों को अवश्य मानना चाहिए। यदि वे सहमत न हों, तो उन्हें सीधे उच्चतर स्तरों पर अपने विचार या रिपोर्ट दर्ज कराने का अधिकार है। पार्टी में केन्द्रीयता एक व्यापक जनवाद के आधार पर स्थापित होती है।

जब हम केन्द्रीकृत नेतृत्व के अन्तर्गत जनवाद की बात करते हैं तो इसका अर्थ होता है कि पार्टी की सभी गतिविधियां संगठित और निर्देशित होती हैं। इसका अर्थ है कि सभी स्तरों पर पार्टी के नेतृत्वकारी निकायों को नियमित तौर पर सदस्यों की आम सभाओं को या उनके प्रतिनिधियों को अपने कामों की रिपोर्ट देनी चाहिए, उन्हें लगातार पार्टी के अन्दर और बाहर की जनता की राय का पता लगाना चाहिए, पार्टी के बाहर के लोगों से बेबाक बातचीत करके और जनता का नियंत्रण स्वीकार करते हुए उन्हें अपनी कार्यशैली में सुधार करना चाहिए। इसका अर्थ यह है कि पार्टी के सदस्यों को पार्टी के सभी स्तरों, संगठनों या नेताओं की कोई भी आलोचना करने या उनके समक्ष प्रस्ताव रखने का अधिकार है; और यह कि आलोचना को दबाना या पार्टी के भीतर बदले की कार्रवाई में हिस्सा लेना निरपेक्ष रूप से वर्जित है। पार्टी में जनवाद एक केन्द्रीकृत नेतृत्व के अन्तर्गत स्थापित होता है।

अध्यक्ष माओ ने हमेशा इस बात पर जोर दिया है कि पार्टी में जनवादी केन्द्रीयता लागू हो। उन्होंने एकदम साफ शब्दों में पूरी पार्टी को बताया: "यदि हमें पार्टी को मजबूत बनाना है, तो हमें जनवादी केन्द्रीयता को अवश्य लागू करना चाहिए ताकि सारे सदस्यों की पहल को उभारा जा सके," (माओ त्से-तुङ, संकलित रचनाएं, खण्ड-1, "कोटि-कोटि जनता को जापान-विरोधी राष्ट्रीय संयुक्त मोर्चे के पक्ष में करने का प्रयत्न करो", पृ.-292, अंग्रेजी संस्करण) और "... हमें अपनी पार्टी की सारी ताकतों को ठोस रूप से संगठन और अनुशासन के जनवादी केन्द्रीयतावादी सिद्धान्तों के आधार पर एकजुट करना चाहिए।" (माओ त्से-तुङ, संकलित रचनाएं, खण्ड-3, "मिली-जुली सरकार के बारे में", पृ. -267, अंग्रेजी संस्करण) पूरी पार्टी में जनवादी केन्द्रीयता सही ढंग से लागू हो, इसके लिए अध्यक्ष माओ ने सिद्धान्तों और कार्यप्रणालियों की एक श्रृंखला प्रस्तुत की है। अपने लम्बे क्रान्तिकारी संघर्षों के दौर में हमारी पार्टी ने समृद्ध जनवादी अनुभव इकट्ठे किए हैं और दृढ़ता से केन्द्रीयता को लागू करने की गौरवशाली परम्पराएं भी अर्जित की हैं। व्यवहार ने यह दिखला दिया है कि जनवादी केन्द्रीयता को लागू करके, यानी एक ओर सबको बोलने का और अपने विचार रखने का मौका देकर, और प्रत्येक व्यक्ति की बुद्धिमत्ता और प्रत्येक व्यक्ति की पहल को प्रयोग में लाकर, और, दूसरी ओर जनवाद पर आधारित सही ढंग के केन्द्रीकरण को लागू करके, एक कठोर अनुशासन स्थापित करके और हरेक व्यक्ति के विचारों और गतिविधियों को एकीकृत करके ही, क्रान्ति और निर्माण में जनता के व्यापक हिस्सों की अगुवाई कर नई जीतें हासिल कर पाना मुमकिन है।

जनवादी केन्द्रीयता को लागू करना अध्यक्ष माओ की क्रान्तिकारी कार्यदिशा को कार्यान्वित करने की एक महत्वपूर्ण गारण्टी है। जनवादी केन्द्रीयता का सांगठनिक सिद्धान्त हमारी पार्टी की राजनीतिक कार्यदिशा से निर्धारित होता है, और यह एक ऐसा सिद्धान्त है जो एक सही कार्यदिशा को लागू करने के लिए आवश्यक है। हमारी पार्टी के सदस्य अध्यक्ष माओ की क्रान्तिकारी कार्यदिशा को लागू करने में जबर्दस्त उत्साह और शानदार पहल का प्रदर्शन करते हैं। पार्टी के भीतर जनवाद का पूरी तरह विकास करके, इस पर निरंतर विचार-विमर्श करने की सभी पार्टी सदस्यों को, कार्यदिशा कैसे लागू हो रही है या नहीं, अपनी राय देने और अपने प्रस्तावों को सूत्रबद्ध करने का अधिकार देकर, हरेक व्यक्ति खुले तौर पर स्वेच्छा से अपने विचार दे, ऐसी स्थितियां बनाकर ही पार्टी सदस्यों में दायित्वबोध मजबूत बनाना, उनमें पार्टी की कार्यदिशा को लेकर चिंता पैदा करना, उनकी पहल और रचनात्मकता को पूरी तरह प्रयोग में लाना और उन्हें अपनी प्रेरक-शक्ति और व्यावहारिक गतिविधियों में जनता के लिए एक मिसाल बनने की भूमिका निभाने के काबिल बनाना संभव है। जनवाद के व्यापक विकास के आधार पर पार्टी संगठन सही रायों की जांच-परख और मूल्यांकन के बाद उन्हें साथ ला सकते हैं, ताकि पार्टी के फैसले क्रान्तिकारी संघर्ष के जितने करीबी से संभव हो उतने अनुरूप हों, और, ताकि पार्टी के नेतृत्वकारी निकाय सही ढंग से कार्यों को निर्देशित कर सकें और अध्यक्ष माओ की क्रान्तिकारी कार्यदिशा को सबसे बेहतर तरीके से लागू कर सकें। अगर हम जनवादी केन्द्रीयता के सिद्धान्त को न मानें, उल्टे हर कोई अपने हिसाब से चले और अपनी मनमानी करे तो पार्टी पूरी तरह अव्यवस्था की हालत में चली जाएगी, और पार्टी की बुनियादी कार्यदिशा को लागू कर पाना असम्भव हो जाएगा, और पूरी पार्टी के एकजुट होने और बड़ी जीतें हासिल कर पाने का तो कोई सवाल ही नहीं रह जाएगा।

जनवादी केन्द्रीयता का लागू होना सर्वहारा अधिनायकत्व को सुदृढ़ बनाने की एक अनिवार्य पूर्वशर्त है। इस बाबत अध्यक्ष माओ ने कहा है: **"बिना जनवादी केन्द्रीयता के सर्वहारा वर्ग की तानाशाही को मजबूत कर पाना असंभव है।"** समाजवादी समाज में नेस्तनाबूद कर दिए गए शोषक वर्ग अपनी हार पर सब्र नहीं कर लेते हैं और वे अपरिहार्य रूप से प्रतिरोध और तोड़-फोड़ की उग्र कार्रवाइयां करते हैं। इससे सर्वहारा वर्ग की पार्टी के लिए यह अनिवार्य हो जाता है कि उसमें कठोर केन्द्रीकरण और एकीकृत अनुशासन हो ताकि इसके सदस्यों की एक ही इच्छा हो और वे एक सही कार्यदिशा के नेतृत्व में एक ही ताल पर मार्च करें, और ताकि वे वर्ग शत्रुओं द्वारा पुनर्स्थापना के प्रतिक्रान्तिकारी षडयन्त्रों पर जीत हासिल करने के लिए जनता की अगुवाई करने और सर्वहारा अधिनायकत्व को मजबूत करने के काबिल हों। लेनिन ने जोर देकर कहा है: **"सर्वहारा वर्ग का पूर्ण केन्द्रीकरण और सबसे कठोर अनुशासन उन बुनियादी पूर्वशर्तों में से एक हैं, जो बुर्जुआ वर्ग पर विजय के लिए आवश्यक हैं।"** (वी.आई. लेनिन, **"वामपंथी" कम्युनिज्म, एक बचकाना मर्ज**, विदेशी भाषा प्रकाशन गृह, पेकिंग, 1965, पृ.-6, अंग्रेजी संस्करण) इसके अलावा, जनवादी केन्द्रीयता को लागू करके, जनता को पूरी तरह लामबंद करके और उन पर आधारित रहकर, व्यापक जनता की जनवादी ताकतों की रक्षा करके और उनकी पहल को पूरी तरह प्रयोग में लाकर ही मुट्ठी भर वर्ग शत्रुओं पर सर्वहारा वर्ग की तानाशाही को ज्यादा प्रभावी ढंग से लागू करना संभव है।

जनवादी केन्द्रीयता को बचाव किया जाए या इसे नष्ट कर दिया जाए – पार्टी के भीतर दो लाइनों के संघर्ष में यह महत्वपूर्ण मुद्दों में से एक था। विभिन्न अवसरवादी कार्यदिशाओं के मुखियाओं ने बहशियाना तरीके से पार्टी की जनवादी केन्द्रीयता में तोड़-फोड़ की है। उन्होंने शर्मनाक तरीके से अवसरवादी कार्यदिशाएं लागू कीं और मार्क्सवाद-लेनिनवाद और सर्वहारा वर्ग और क्रान्तिकारी जनता के हितों से पूरी

(पेज 10 पर जारी)

एक क्रांतिकारी पार्टी के बिना मजदूर वर्ग क्रांति को कतई अंजाम नहीं दे सकता। लेनिन ने इस बात को बार-बार जोर देकर कहा था। स्तालिन और माओ ने भी बराबर इस बात पर जोर दिया और बीसवीं सदी की सभी सफल सर्वहारा क्रान्तियों ने भी इसे सत्यापित किया।

लेनिन ने सर्वहारा वर्ग की क्रान्तिकारी पार्टी के सांगठनिक उसूलों का निर्धारण किया और इसी फौलादी सांचे में बोल्शेविक पार्टी को ढाला। चीन की पार्टी भी बोल्शेविक पार्टी की ही उत्तराधिकारी थी। सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति के दौरान, समाजवादी समाज में वर्ग-संघर्ष का संचालन करते हुए माओ के नेतृत्व में चीन की पार्टी ने अन्य युगान्तरकारी सैद्धान्तिक उपलब्धियों के साथ-साथ लेनिनवादी सांगठनिक सिद्धान्तों को भी और आगे विकसित किया।

सोवियत संघ और चीन में पूंजीवाद की पुनर्स्थापना के लिए बुर्जुआ तत्वों ने सबसे पहले यही जरूरी समझा कि सर्वहारा वर्ग की पार्टी का चरित्र बदल दिया जाये। हमारे देश में भी संसदीय रास्ते की अनुगामी नामधारी कम्युनिस्ट पार्टियां मौजूद हैं। भारतीय मजदूर क्रांति को सफल बनाने के लिए भारत में भी सर्वहारा वर्ग की एक सच्ची क्रान्तिकारी पार्टी खड़ी करने का काम सर्वोपरि है।

इसके लिए बेहद जरूरी है कि मजदूर वर्ग यह जाने कि असली और नकली कम्युनिस्ट पार्टी में क्या फर्क होता है और एक क्रान्तिकारी पार्टी कैसे खड़ी की जानी चाहिए।

इसी उद्देश्य से, फरवरी, 2001 अंक से हमने एक बेहद जरूरी किताब 'पार्टी की बुनियादी समझदारी' के अध्यायों का किश्तों में प्रकाशन शुरू किया है। इस अंक में उन्नीसवीं किश्त दी जा रही है। यह किताब सांस्कृतिक क्रान्ति के दौरान पार्टी-कतारों और युवा पीढ़ी को शिक्षित करने के लिए तैयार की गयी श्रृंखला की एक कड़ी थी। चीन की कम्युनिस्ट पार्टी की दसवीं कांग्रेस (1973) में पार्टी के गतिशील क्रान्तिकारी चरित्र को बनाये रखने के प्रश्न पर अहम सैद्धान्तिक चर्चा हुई थी, पार्टी का नया संविधान पारित किया गया था और संविधान पर एक महत्वपूर्ण रिपोर्ट प्रस्तुत की गयी थी। इसी नई रोशनी में यह पुस्तक एक सम्पादकमण्डल द्वारा तैयार की गयी थी। मार्च, 1974 में पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, शंघाई से इस पुस्तक के प्रथम संस्करण की 4,74,000 प्रतियां छपीं। यह पुस्तक पहले चीनी भाषा से फ्रांसीसी भाषा में अनूदित हुई और 1976 में प्रकाशित हुई। फिर नार्मन बेथ्यून इंस्टीच्यूट, टोरण्टो (कनाडा) ने इसका फ्रांसीसी से अंग्रेजी में अनुवाद कराया और 1976 में ही इसे प्रकाशित भी कर दिया। प्रस्तुत हिन्दी अनुवाद मूल पुस्तक के इसी अंग्रेजी संस्करण से किया गया है।

– सम्पादक

उ.प्र. विद्युत के निजीकरण के लिए विश्व बैंक का निर्देश

(बिगुल संवाददाता)

लखनऊ। उत्तर प्रदेश में बिजली विभाग के निजीकरण में देरी से विश्व बैंक काफी खफा है। प्रदेश दौरे पर आयी विश्व बैंक की टीम ने सरकार को निर्देशित किया है कि वह मार्च, 2003 तक विद्युत वितरण कम्पनियों के विधिवत गठन की प्रक्रिया पूरी कर ले। टीम ने समयबद्ध कार्यक्रम तैयार करने और बिजली विभाग के इंजीनियरों व कर्मचारियों को इसके लिए राजी करने के लिए दबाव डालने का भी फरमान जारी किया है।

पिछले दिनों विश्व बैंक की एक टीम दस दिनों तक राजधानी लखनऊ में डेरा डाले रही। उसने राज्य में ऊर्जा समेत तमाम विभागों में चल रहे "सुधार" कार्यक्रमों की समीक्षा की, असंतोष प्रकट करते हुए सरकार को चेतावनी दी और वापस लौट गयी। इस दौरे के दौरान क्रेस्को का स्वामित्व एन.टी.पी.सी. को सौंपने पर अंतिम मुहर भी लग गयी। टीम ने धमकी भरे लहजे में स्पष्ट किया कि विश्व बैंक द्वारा दिये जाने वाले कर्ज का सारा दारोमदार "सुधार" कार्यक्रमों की प्रगति पर निर्भर करेगा। उसने सरकार से साफ तौर से कहा है कि मार्च, 2003 तक विद्युत वितरण के लिए स्वतंत्र टीमें अस्तित्व में आ जानी चाहिए। नयी कम्पनियों के पंजीकरण के लिए नवम्बर तक की समय सीमा रखने, प्रबंध निदेशकों व निदेशकों का चयन, परिसम्पत्तियों के हस्तांतरण, अंतरण स्कीम, वितरण के लाइसेंस आदि का काम इसी अवधि में पूरा करने के लिए कंसलटेण्ट प्राइस वाटर हाउस कूपर्स की मदद से समय सारिणी तैयार करने का भी उसने "सुझाव" दिया है।

दरअसल, उदारीकरण के इस दौर में जनता की गाढ़ी कमाई से खड़ा हुए बिजली जैसे तमाम प्रतिष्ठानों को जल्द से जल्द देशी और बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को सौंपने के लिए विश्व बैंक-अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोष-विश्व व्यापार संगठन काफी व्याकुल हैं। उत्तर प्रदेश में राज्य विद्युत बोर्ड को भंग करके उत्पादन, ट्रांसमिशन व वितरण के तीन हिस्सों में पहले ही बांटा जा चुका है। राज्य में चुनाव के कारण निजीकरण की प्रक्रिया स्थगित थी। अब नयी सरकार के गठन के बाद इसे गति देने का काम तेज हो गया है। विश्व बैंक की मांग रही है कि उपभोक्ता को महंगी दरों पर बिजली उपलब्ध कराई जाए, सभी प्रकार की सब्सिडियां समाप्त कर दी जाएं और पहले चरण में विद्युत वितरण को निजी हाथों में सौंपने के बाद धीरे-धीरे पूरे विद्युत विभाग को मुनाफाखोरों के हाथों में सौंप दिया जाए। पूर्ववर्ती व वर्तमान – सभी सरकारें इससे पूर्णतः सहमत रही हैं। सहमति तो 'कास्ट सेविंग' के नाम पर कर्मचारियों की संख्या कम करने पर भी है।

अन्य विभागों की तरह बिजली के निजीकरण के लिए भी विद्युत चोरी, लचर व्यवस्था और घाटे का तर्क दिया जाता रहा है। यहां गौरतलब है कि बिजली की सबसे अधिक चोरी और भुगतान के करोड़ों का बकाया उद्योगों में है, जिसे रोकने व बकाया वसूलने के मामले में सरकारें आंखें मूंदे रही हैं। सरकार तो बिजली के संकट का एक ऐसा हौव्वा खड़ा करती रही है कि आम जन ऊब कर इसके निजीकरण के हामी बन जाए!

यह सोचने का विषय है कि वैश्विक लुटेरों की संस्था विश्व बैंक यहां घाटा पूरा करने नहीं आयी है, बल्कि वह मुनाफाखोरों के मुनाफे के लिए नये रास्ते मुहैया कराने आयी है। मुनाफाखोरों की निगाहें आज हर उस चीज पर टिकी है जो अब कमाऊ पूत साबित हो सकते हैं। ऊर्जा क्षेत्र भी उनमें से एक है।

इस कड़ी की शुरुआत दिल्ली बिजली वितरण का निजी हाथों में सौंपने से हो चुकी है। अब अगला पड़ाव उत्तर प्रदेश में है और फिर पूरे देश का ऊर्जा क्षेत्र मुनाफाखोरों के हवाले हो जाएगा।

इधर पूंजीवादी लुटेरे और उनकी सरकारें उदारीकरण के दूसरे दौर की नीतियों को तेजी से लागू करती जा रही हैं, उधर ट्रेड यूनियन आन्दोलन में पूरी तरह से खामोशी छाई हुई है। प्रदेश के बिजली विभाग में दर्जनों यूनियनें अपनी-अपनी दुकानदारियां चला रहे हैं, लेकिन कर्मचारियों पर छाये संकटों से निपटने के लिए कोई भी रणनीति नहीं बन रही है। बीच-बीच में आन्दोलनों का एक क्षीण सा ज्वार उठता है और फिर शांत हो जाता है। सरकारें भी इस कमजोरी को जानती हैं और उससे निपटने के लिए वे पूरी तरह से तैयार बैठी हैं।

वास्तव में, अलग-अलग टुकड़े में बंटी यूनियनें और उनके मठाधीश नेताओं के लड़ने की धार पूरी तरह से भोथरी हो चुकी है। विभिन्न चुनावी राजनीतिक पार्टियों के दुमछल्ले यूनियनों की नीतियां ही प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से उदारीकरण व निजीकरण के पक्ष में है। उन्हें खतरा महज अपनी दुकानदारियों के उजड़ने का है जिस कारण वे बीच-बीच में कुछ एक प्रदर्शनों से आत्म संतुष्ट हो जाया करती हैं।

ऐसे हालात में मजदूरों-कर्मचारियों को सबक लेना होगा। आज का संघर्ष पहले से ज्यादा कठिन और तीखा संघर्ष है। उन्हें अपने गद्दार नेतृत्व से भी लड़ना है अपने खोये हकों की बहाली के लिए भी। अब मेहनतकश आबादी के पास खोने के लिए कुछ खास नहीं बचा है लेकिन पाने के लिए सब कुछ है। इसलिए उन्हें अपनी यूनियनों का क्रान्तिकारीकरण करना होगा। उन्हें अपने संघर्षों को दूसरी मेहनतकश आबादी के संघर्षों से जोड़ना होगा। उदारीकरण की नीतियों पर लगातार प्रहार करते हुए अपनी व्यापक वर्गीय एकता कायम करनी होगी। अपने इसी एकताबद्ध संघर्ष के बलबूते मेहनतकश आबादी पूंजी के राज को जड़ से उखाड़ सकती है।

दिल्ली विद्युत वितरण के निजीकरण की एक तस्वीर

(बिगुल संवाददाता)

देश में निजीकरण की जो बयार बह रही है उसकी चपेट में वे सभी सार्वजनिक उपक्रम या तो आ चुके हैं या आने वाले हैं जो एक समय में जनता के खून-पसीने से खड़े हुए थे। इन प्रतिष्ठानों को औने-पौने दामों में देशी और बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को सौंपने के क्रम में विद्युत विभाग का भी नम्बर है। बिजली के जनसुलभ होने और "एवन" व्यवस्था देने के सरकार बड़े-बड़े दावे कर रही है। सरकार ने विगत 1 जुलाई को दिल्ली विद्युत बोर्ड की वितरण व्यवस्था को निजी हाथों में सौंप दिया। पिछले तीन महीने के दौरान इस निजीकरण से क्या कुछ हुआ, इस पर नजर दौड़ाएं तो भविष्य की तस्वीर एकदम साफ हो जाएगी।

दिल्ली विद्युत बोर्ड को छह

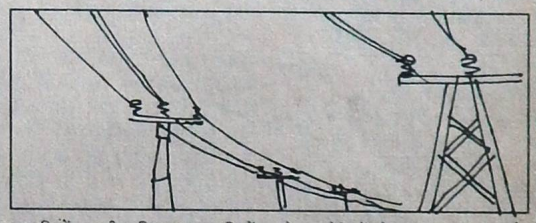

कम्पनियों – तीन वितरण कम्पनियों और एक-एक ट्रांसमिशन, जनरेशन व होल्डिंग कम्पनियों में बांट दिया गया। होल्डिंग कम्पनी की स्थिति तो स्पष्ट नहीं है लेकिन ट्रांसमिशन (ट्रांस्को) और जनरेशन (जेन्को) फिलहाल सरकारी नियंत्रण में रखी गयी हैं। पूरे दिल्ली को तीन भागों में बांटकर मध्यपूर्व व दक्षिण-पश्चिम क्षेत्र बी.एस.आई.एस. को तथा उत्तर-पश्चिम क्षेत्र टाटा पावर को सौंपा गया है। इन वितरण कम्पनियों का लेन-देन ट्रांस्को से होगा।

सबसे पहले निजीकरण की प्रक्रिया को ही देखें। पिछले 10-12 वर्षों से दिल्ली विद्युत बोर्ड का न तो कोई "बैलेंसशीट" बना है और न ही पूरी सम्पत्ति का, लेनदारी-देनदारी का कोई लेखा-जोखा तैयार हुआ है। परिणामतः इन निजी कम्पनियों को 51 प्रतिशत शेयर के रूप में महज 450 करोड़ रुपये का भुगतान करना पड़ा। पूरा सौदा खरीदारों की शर्तों पर हुआ। और पूरी परिसम्पत्ति पर उनका कब्जा हो गया। कब्जा जमाने का यह एक उदाहरण पर्याप्त है।

निजीकरण से पहले नेहरू प्लेस में विद्युत बोर्ड का मुख्यालय था, जहां के ज्यादातर अधिकारियों का स्थानान्तरण ट्रांस्को में हो चुका था। इन कम्पनियों ने 1 जुलाई की रात्रि 12 बजे मुख्यालय पर कब्जा जमा लिया और एक भी सामान ट्रांस्को को नहीं दिया। लिहाजा ट्रांस्को को फर्नीचर से लेकर कूलर, एयरकंडीशनर और फोन तक नया खरीदना पड़ा।

इस सौदे में शेयरों के मूल्य पर 16 प्रतिशत लाभांश की गारंटी दी गयी है। काफी रस्साकशी के बाद घाटे को 17 प्रतिशत कम करने का समझौता हुआ है। यही नहीं ये कम्पनियां फिलहाल ट्रांस्को से 1.40 रुपये की दर से बिजली खरीदकर औसतन 4.80 रुपये प्रति यूनिट की दर से बेच रही हैं। शर्त के अनुसार 30 जून तक के बकाया बिलों की वसूली से प्राप्त धनराशि में से भी 20 प्रतिशत हिस्सा निजी कम्पनियों को प्राप्त होगा और ट्रांस्को को 80 प्रतिशत हिस्सा मिलेगा। कर्मचारियों की पेंशन, भविष्यनिधि छुट्टियों का नगदीकरण आदि का भुगतान ट्रांस्को को करना होगा। यही नहीं अवकाश प्राप्त पुराने कर्मचारियों के बकाया भुगतान के लिए भी निजी कम्पनियों ने हाथ खड़े कर दिये हैं।

निजी कम्पनियां काम की स्थितियों और कर्मचारियों की संख्या पर भी लगातार नजर गड़ाये हुए हैं। विभाग में ठेके पर काम कराने की प्रथा पहले से ही मौजूद है। नया श्रम कानून भी मालिकों के पक्ष में आने ही वाला है, लिहाजा विद्युतकर्मियों पर छंटनी की तलवार अभी से लटकने लगी है। कम्पनियों की काग दृष्टि इस पर लगी हुई है कि वे ज्यादा से ज्यादा मुनाफा कैसे बटोर लें। जाहिरा तौर पर कर्मचारियों की संख्या घटाकर, दैनिक वेतन भोगियों से काम करवाकर और बिजली की कीमत बढ़ाकर।

देश के अन्य सरकारी प्रतिष्ठानों की तरह विद्युत विभाग का दुर्भाग्य यह रहा है कि यहां की ट्रेड यूनियनें कई-कई खण्डों में बंटी रही हैं जिनके मठाधीश नेतृत्व बिक चुके हैं। अपने आन्दोलन को पेंशन-बोनस-भत्ते-ट्रांसफर तक केन्द्रित कर देने और नेतृत्व की बार-बार की गद्दारियों के चलते कर्मचारियों में भी लड़ने की क्षमता काफी कमजोर पड़ चुकी है। अब एक ही विभाग के कई-कई टुकड़ों में बंट जाने के कारण इनकी ताकत और भी ज्यादा बंट गयी है। वैसे भी इन कम्पनियों ने निजीकरण का विरोध रोकने के लिए 500 रुपये की वेतन वृद्धि करके जुबान पर ताला लगा दिया है।

दिल्ली विद्युत बोर्ड के इस शुरुआती निजीकरण से न तो सरकार का "घाटा" कम होने वाला है, न तो कर्मचारियों की नौकरी सुरक्षित है और उल्टे उपभोक्ताओं को बिजली की महंगी कीमत भी चुकानी पड़ रही है, और आगे उसे और भी ज्यादा महंगे दरों पर ही बिजली मिल सकेगी। दूर-दराज के जिन इलाकों में उपभोक्ता कम होंगे और बिजली मुहैया कराना खर्चीला पड़ेगा वहां ये कम्पनियां या तो बिजली देंगी ही नहीं अथवा उसकी भारी कीमत वसूलेंगी।

अभी तो यह शुरुआत है। जब उत्पादन से लेकर वितरण तक सब कुछ निजी कम्पनियों के हवाले हो जाएगा तब अलग-अलग कम्पनियों के बीच मुनाफे की अंधी हवस के कारण काफी खींचतान मचेगी तो उसका भी दण्ड आम उपभोक्ताओं को यानी जनता को ही भोगना पड़ेगा।

इस शुरुआती निजीकरण के बाद न केवल बिजली की दरें महंगी हुई हैं बल्कि विद्युत कटौती में भी वृद्धि हुई है और खराब बिजली को ठीक करने की व्यवस्था भी और ज्यादा लचर हुई है।

राजधानी दिल्ली में जब निजीकरण का यह आलम है तो देश के पिछड़े इलाकों की स्थिति क्या होगी, इसका सहज अनुमान लगाया जा सकता है।

जनता के अधिकारों पर एक और कुठाराघात

(पेज 4 से आगे)

आर्थिक गतिशीलता है और समृद्धि के टापू यहां खड़े हैं वो यहां के इन्हीं मेहनतकश गरीबों के दम पर है। भू माफियाओं की तीन-तिकड़मों के कारण ही यहां की थारू-बुक्सा जैसी मूल आबादी का भी एक हिस्सा भूमिहीन हो चुका है। इन मेहनतकशों में से अधिकतम आबादी के पास राशन कार्ड है, मतदाता सूचियों में नाम दर्ज है लेकिन जमीन के कागजात न होने के कारण वे सभी स्थायी निवास प्रमाण पत्र से वंचित हो गये हैं। वैसे भी यह प्रमाण पत्र पाना एक जटिल प्रक्रिया है। अपनी दिहाड़ी छोड़कर पटवारी, तहसील से लेकर एस.डी.एम. तक का चक्कर लगाना गरीबों के लिए टेढ़ी खीर है, जबकि धनिकों के लिए सब कुछ आसान है।

दरअसल, नया राज्य बनने के साथ ही चुनावी राजनीतिक पार्टियां यहां भी अपना घृणित खेल खेल रही हैं। वैसा ही खेल जैसा कि नये झारखण्ड राज्य में भाजपाई मुख्यमंत्री बाबू लाल मरांडी खेल रहे हैं। वहां आदिवासी बनाम गैर आदिवासी खेल हो रहा है तो यहां पहाड़ी बनाम देशी के बंटवारे का घृणित खेल। एक ही देश के भीतर अलग-अलग राज्यों में नागरिक के रूप में चिन्हित करना और अधिकारों का बंटवारा करना पूर्णतः गलत है। हर हाल में इसका खामियाजा मेहनतकशों को ही भोगना पड़ता है।

जिन लोगों ने यहां की जमीनों को जरखेज बनाया वे मूल निवासी या स्थायी निवासी नहीं हैं, क्यों? क्या सरकार यह बतायेगी कि वे कहां के निवासी हैं? आखिर वे कहां जाएं? जिस बच्चे ने यहां जन्म लिया, यहीं पढ़ा-लिखा, मेहनत-मजूरी की वह निश्चित तौर पर यहीं का नागरिक हुआ। वैसे भी इस देश की 42-44 करोड़ की सर्वहारा आबादी है जो काम की तलाश में एक जगह से दूसरी जगह आती-जाती रहती है, उसके लिए तो एक राज्य क्या एक देश की भी कोई सीमा नहीं होती है।

चुनावी राजनीतिक पार्टियां एक तरफ तो "राष्ट्र प्रेम", "देश प्रेम" की बड़ी-बड़ी बातें करती हैं और दूसरी तरफ क्षेत्र-धर्म-जाति की बाड़ेबन्दियां करती हैं ताकि वे अपने लूट के खतरनाक खेल को अंजाम दे सकें। मेहनतकश आबादी को टुकड़े-टुकड़े में बांटकर उन्हें गैर मुद्दों में इसलिए उलझा देती हैं ताकि वे अपने हक के लिए वास्तविक संघर्षों में न उतर सकें। भोजन-वस्त्र आदि का सवाल एक बुनियादी सवाल है। सत्ताधारी इन जिम्मेदारियों से बचने के लिए ही नये-नये विवादों को जन्म देते हैं। मेहनतकशों को इस साजिश को समझना होगा।

पूरे देश की आम मेहनतकश जनता की तरह उत्तराखण्ड की जनता को भी यह समझना होगा कि निवास प्रमाणपत्र से वंचित करना उनके बुनियादी अधिकारों पर कुठाराघात है और इसके लिए उन्हें एकयबद्ध संघर्ष करना होगा।

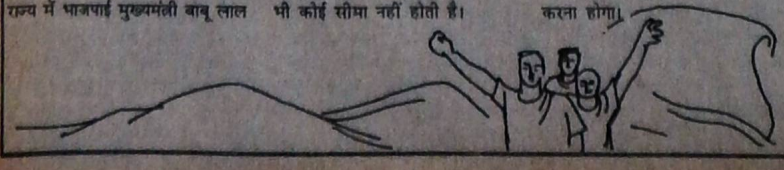

'बकलमे-खुद' स्तम्भ की शुरुआत करते हुए चन्द बातें

-सम्पादक मण्डल

'बिगुल' के इस अंक से हम एक नये स्तम्भ की शुरुआत कर रहे हैं – 'बकलमे-खुद', यानी खुद अपनी कलम से। जैसा कि नाम से ही जाहिर है, इस स्तम्भ के अन्तर्गत हम ज़िन्दगी की जद्दोजहद में जूझ रहे मज़दूरों और उनके बीच रहकर काम करने वाले मज़दूर संगठनकर्ताओं-कार्यकर्ताओं की साहित्यिक रचनाएं प्रकाशित करेंगे – कविताएं, कहानियां, डायरी के पन्ने, गद्यगीत आदि-आदि।

इस स्तम्भ की शुरुआत की भी एक कहानी है। 'बिगुल' के सभी प्रतिनिधियों-संवाददाताओं के अनुभव से यह जुड़ी हुई है। हमने पाया कि जो कुछ पढ़े-लिखे और उन्नत चेतना के मज़दूर हैं, वे गोर्की की 'मां', उनकी आत्मकथात्मक उपन्यास-त्रयी और अन्य रचनाओं को तो बेहद दिलचस्पी के साथ पढ़ते हैं, प्रेमचन्द उन्हें बेहद पसन्द आते हैं, आस्त्रोव्स्की की 'अग्निदीक्षा' और पोलेवेई की 'असली इंसान' ही नहीं, कुछ तो बाल्जाक और चेर्निशेव्स्की को भी मगन होकर पढ़ते हैं। लेकिन जब हम हिन्दी के आज के सिरमौर वामपंथी कथाकारों की बहुचर्चित रचनाएं उन्हें पढ़ने को देते हैं तो वे बेमन से दो-चार पेज पलटकर धर देते हैं। पढ़कर सुनाते हैं तो उबासी या झपकी लेने लगते हैं। यदि उन सबकी राय को समेटकर थोड़े में कहा जाये, तो इसका कारण यह है कि ज्यादातर वामपंथी-प्रगतिशील लेखक आज अपनी रचनाओं में आम आदमी की ज़िन्दगी की, संघर्ष और आशा-निराशा की जो तस्वीर उपस्थित कर रहे हैं, वह आज की ज़िन्दगी की सच्चाइयों से कोसों दूर है। वह या तो ट्रेनों-बसों की खिड़कियों से देखे गये गांवों और मज़दूर बस्तियों का चित्र है, या फिर अतीत की स्मृतियों के आधार पर रची गयी काल्पनिक तस्वीर। नयेपन के नाम पर जो कला का इन्द्रजाल रचा जा रहा है, वह भी आमे जनता के लिए बेगाना है। कारण स्पष्ट है। दरअसल इन तथाकथित वामपंथियों का बड़ा हिस्सा "वामपंथी कुलीनों" का है। ये "कलाजगत के शरीफजादे" हैं जो प्रायः प्रोफेसर, अफसर या खाते-पीते मध्यवर्ग के ऐसे लोग हैं जो जनता की ज़िन्दगी को जानने-समझने के लिए हफ्ते-दस दिन की छुट्टियां भी उसके बीच जाकर बिताने का साहस नहीं रखते। ये अपने नेहनीड़ों के स्वामी सद्गृहस्थ लोग हैं। ये गरुड़ का स्वांग भरने वाली आंगन की मुर्गियां हैं। ये फर्जी वसीयतनामा पेश करके गोर्की, लू शुन, प्रेमचन्द का वारिस होने का दम भरने वाले लोग हैं।

समय आ रहा है जब क्रान्तिकारी लेखकों-कलाकारों की एकदम नई पीढ़ी जनता की ज़िन्दगी और संघर्षों के ट्रेनिंग-सेण्टरों से प्रशिक्षित होकर सामने आयेगी। इन कतारों में आम मज़दूर भी होंगे। भारत का मज़दूर वर्ग आज स्वयं अपना बुद्धिजीवी पैदा करने की स्थिति में आ चुका है। भारत का यह नया बुद्धिजीवी मज़दूर या मज़दूर बुद्धिजीवी सर्वहारा क्रान्ति की अगली-पिछली पांतों को नई मजबूती देगा। आज परिस्थितियां ऐसी हैं कि हम अपेक्षा करें कि भारतीय मज़दूर वर्ग भी अपना इवान बाबुश्किन और मक्सिम गोर्की पैदा करेगा। 'बिगुल' की कोशिश होगी कि वह ऐसे नये मज़दूर लेखकों का मंच बने और प्रशिक्षणशाला भी।

इसी दिशा में, पहलकदमी जगाने वाली एक शुरुआती कोशिश के तौर पर हम इस स्तम्भ की शुरुआत कर रहे हैं। मुमकिन है कि मज़दूरों और मज़दूरों के बीच काम करने वाले संगठनकर्ताओं की इन रचनाओं में कलात्मक अनगढ़ता और बचकानापन हो, पर इनमें जीवित यथार्थ की ताप और रोशनी के बारे में आश्वस्त हुआ जा सकता है। ज़िन्दगी की ये तस्वीरें सच्ची वामपंथी कहानी का कच्चा माल भी हो सकती हैं। और फिर यह भी एक सच है कि हर नयी शुरुआत अनगढ़-बचकानी ही होती है। लेकिन मंजे-मंजाये घिसे-पिटे लेखन से या काल्पनिक जीवन-चित्रण के उच्च कलात्मक रूप से भी ऐसा अनगढ़ लेखन बेहतर होता है जिसमें जीवन की वास्तविकता और ताजगी हो।

इस स्तम्भ की शुरुआत हम मज़दूर संगठनकर्ता अजय की कहानी 'एक मौत' से कर रहे हैं। इस कहानी पर हम 'बिगुल' के पाठकों की प्रतिक्रिया भी चाहते हैं। हमारा यह भी अनुरोध है कि मज़दूर साथी अपनी ज़िन्दगी की क्रूर-नंगी सच्चाइयों की तस्वीर पेश करने के लिए अब खुद कलम उठायें और ऐसी रचनाएं इस स्तम्भ के लिए भेजें।

बक़लमे-खुद

एक मौत

• अजय

सुबह अपनी उपस्थिति दर्ज कराने के लिए बेताब था, लेकिन बादल के एक बड़े टुकड़े ने अपने काले-कुरूप कूबड़ से सूरज को ढंक रखा था।

सुबह के लगभग सात बज रहे थे, लेकिन माहौल पांच बजे जैसा बना हुआ था। आसमान में रोशनी धीरे-धीरे पंख खोल रही थी, लेकिन धरती पर काफी उमस भरा झुटपुटा था। मौसम में घुटन भरी शान्ति थी। हवा रुकी हुई सी थी। लेकिन इस माहौल से अप्रभावित

पशु-पक्षियों ने अपना रोजमर्रे का जीवन शुरू कर दिया था। चिड़ियों ने अपना बसेरा छोड़ दिया था। जिन पेड़ों को वे अपने चहचहाने से गुलजार किये हुए थीं। उनके नीचे हालांकि भैंस पालने की कोई जगह नहीं थी, लेकिन पन्द्रह भैंसे बंधी हुई थी। आसपास कुछ बीस कोठरियां बनी थीं जिनमें पचहत्तर मज़दूर रहते थे। औसतन हर कमरे में चार-चार मज़दूर रहते थे। कुछ में मज़दूर परिवार सहित रहते थे। लगता था कि कमरे भैंसों के लिए बने थे जिनमें मज़दूर रहने लगे थे और भैंसों को पेड़ों के नीचे कर दिया गया था। एक किनारे कच्चे शौचालय बने हुए थे। कमरों की साइज 8 फुट गुणा 7 फुट के लगभग थी। किसी में खिड़की-रोशनदान नहीं। रंगाई-पुताई शायद कभी नहीं हुई थी। सभी कमरों का किराया 610 रुपये था। 600 कमरे के और 10 रुपये हर मज़दूर को शौचालय सफाई के लिए देने होते थे। शौचालय कुल तीन थे। एक परमानेण्ट भरा रहता था। दूसरे का दरवाजा नीचे से गायब था। तीसरे के दरवाजे को हाथ से पकड़कर ही भीतर बैठा जा सकता था। नल सिर्फ एक था।

इसी नल पर पतीले में चावल लिये धोने के लिए अंसारी काफी देर से खड़ा है। अभी उसके आगे चार आदमी हैं। अपनी पारी का इंतजार करते हुए वह जमीन पर बैठ जाता है। आसपास सभी चुपचाप अपने काम में लगे हैं। शौचालय के दरवाजे के सामने पन्द्रह लोग डब्बे लिये लाइन में खड़े हैं। लगभग आठ बच चुके हैं। नल के एक किनारे लगे ईंटों पर बैठकर चार-पांच जने दांत मांजे जा रहे हैं। बगल में बरतनों की सफाई का काम निपटाया जा रहा है। नल के पास नहाने के इन्तजार में भी कई मज़दूर खड़े हैं। किसी को किसी से कोई शिकायत नहीं। आखिर समय भी कहां है इसके लिए! बार-बार चढ़ते दिन या घड़ी पर नज़र चली जा रही है।

"हां भाई, धोना है तो धोओ, नहीं तो आराम करो।" अंसारी नज़र ऊपर उठाता है। धीरे से उठकर चावल धोने लगता है। चावल पकने भर पानी लेकर लड़खड़ाते हुए चल देता है।

सीढ़ी के नीचे वाली कोठरी है उसकी। कुल चार जने इसमें रहते हैं। अभी तीन जने नाइट लगाकर लौटे ही नहीं हैं। दरवाजे के ठीक बगल में गैस का छोटा वाला सिलिण्डर रखा है। उसके बगल में जूते-चप्पलों का ढेर लगा हुआ है। उसके बगल में सब्जियां रखी हुई हैं। सड़े हुए प्याज की बास आ रही है। इसके बगल में ऊपर दीवार पर तीन-चार बैग लटके हुए हैं। इसके ठीक नीचे फर्श पर बिस्तरे रखे हैं। बिस्तरे के पास ही खाना पकाने के सामान हैं। कोठरी में घुसने के बाद अंसारी गैस पर चावल का पतीला रखकर हाथ में झाड़ू उठा लेता है। फिर जाने क्या सोचते हुए झाड़ू हाथ में पकड़े हुए ही फर्श पर लेट जाता है। सांवला रंग, शरीर में हड्डियों व काली चमड़ी के अलावा बढ़े हुए बाल ही दिखायी दे रहे हैं।

'अंसारी सो गये क्या? तुम्हारा चावल जल रहा है।' अंसारी ऊं करता है पर जस का तस पड़ा रहता है। फिर वह मज़दूर आकर उसका चावल देखता है। गैस बन्द कर उसे जगाते हुए उसके पास बैठ जाता है।

'क्या हुआ है? तबियत खराब है क्या तुम्हारी?' हूं करते हुए अंसारी उठकर बैठ जाता है। उसकी अन्दर को धंसी हुई आंखें ऐसी हैं जैसे किसी गीली चीज के ऊपर कोई गोली रखकर दबा दी गयी हो। उसकी आंखें सीढ़ी के नीचे वाली दीवार पर टिकी हुई हैं जहां कील के सहारे प्लास्टिक की थैली में कूड़ा टांगा हुआ है।

'रात को देर से आये थे क्या? क्यों सो रहे हो? साढ़े आठ हो गया है, कम्पनी नहीं जाना है क्या?'

'नहीं जाऊंगा। यार, एक काम कर दो। दो अण्डे लेते आओ, और एक सरदर्द की गोली।'

'लाओ, पैसे दो।'

अंसारी ने पांच रुपये दिये। वह मज़दूर सामान लाने चला गया। बायीं हाथ वाली दीवार पर एक कैलेण्डर टंगा था। अंसारी देखने लगा कि आज तारीख कौन सी है। 'अरे आज तो बीस तारीख है। चलो आज ठेकेदार पैसे दे देगा।' मन ही मन उसने सोचा।

सामान लेकर वापस लौटते हुए मज़दूर उससे कहता है – 'तबियत खराब है तो मत जाओ। आराम कर लो। तुमसे काम भी तो नहीं हो पायेगा।'

'सोच तो रहा था कि न जाऊं। लेकिन आज बीस तारीख हैं जाऊंगा तो पैसे मिल जायेंगे।' भद्दी सी एक गाली देते हुए दूसरा मज़दूर कहता है, 'यार क्या मनमानी हो गयी है। पहले सब सात को देते थे, फिर दस हुआ, अब बीस तारीख को देने लगे हैं।'

बिना कुछ बोले अंसारी फिर लेट जाता है।

'अरे पौने नौ हो गये, मैं चलता हूं।' साथी मज़दूर के जाने के बाद अंसारी बिजली की रफ्तार से उठता है, जैसे उसकी तन्द्रा टूटी हो। उठकर गैस जलाकर तवा रख देता है। मिर्च और नमक डालकर पलक झपकते आमलेट बनाता है और चावल के साथ खाने लगता है। चावल नीचे से जल चुका है लेकिन उसे कड़वा-मीठा कुछ भी नहीं लग रहा है। सोचता है, शायद बुखार की वजह से जायका खराब हो गया है। चटपट हाथ धोकर कोठरी में ताला लगाकर फैक्ट्री की तरफ तेज कदमों से चल देता है।

'सड़क पर भीड़ बहुत कम है। लगता है लेट हो गया है।' अंसारी सोचता है। वह दौड़ते-भागते फैक्ट्री पहुंचता है। फैक्ट्री के छोर पर पहुंचते-पहुंचते घण्टी बज चुकी होती है। ठीक नौ बज वह गेट पर हाजिर, लेकिन गेट बन्द!

'अभी तो नौ ही बजा है न, गेट खोलो।' 'आज खोल देता हूं, अगर फिर लेट हुआ तो बाहर ही रहना।'

गेट खुलते ही वह नल पर पानी पीने चला जाता है। पानी पीकर ऊपर सीढ़ियों पर चढ़ता है। तभी ठेकेदार आवाज लगाता है, 'डोली में डेग डाल रहे हो क्या? जल्दी चल इधर आ। इसे ऊपर लेता जा।' इतना कहकर वह

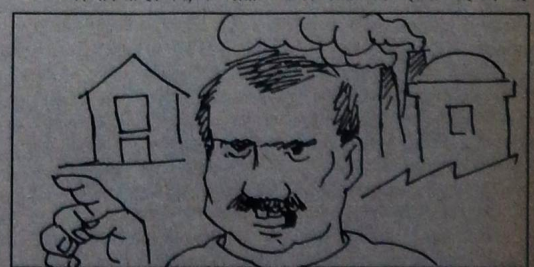

ऊपर चला जाता है।

चालीस किलो की बोरी, जिसमें रबड़ भरा हुआ है। अब क्या करे? अकेले तो उठेगा नहीं। ऊपर जाय तो

(पेज 11 पर जारी)

(पेज 1 से आगे)

दलित मुक्ति का वास्तविक प्रोजेक्ट ...

भर दलित नेताओं और "दलित-समर्थक" नेताओं का दलितों को इज्जत और आजादी दिलाने के नाम पर धिक्कार-फटकार-ललकार... मैदान में पड़ा अर्जियों का ढेर ... अनसुनी फरियादें ... भगदड़ ... यह समूचा परिदृश्य एक रूपक बन कर जेहन में उभरता है... समकालीन दलित राजनीति के परिदृश्य में देश के आम दलित की आज भी जो स्थिति है, उसका रूपक। एक जीवन्त तस्वीर – उस त्रासदी की, 'आजादी' के 55 साल बाद भी जिसकी शिकार है देश की करोड़ों की दलित आबादी।

इसके साथ ही जेहन में यह सवाल कौंधता है कि आखिर क्या कारण है कि पिछली आधी सदी के दौरान दलित आबादी के बीच से जो भी नया रैडिकल स्वर उभरकर सामने आया है वह किसी न किसी रूप में सत्ता की घिनौनी अवसरवादी राजनीति के समर्धन से आगे नहीं जा पाता। आम दलित इस राजनीति के चौसर पर सिर्फ बेजान मोहरा बनकर रह गया है। क्या अब भी दलित राजनीति में विचारधारा के सवाल को दरकिनार कर दलित मुक्ति के रास्ते पर आगे बढ़ा जा सकता है?

देश में समकालीन दलित राजनीति के मौजूदा हश्र को देखते हुए क्या अब भी कोई भ्रम रह गया है कि ये ताकतें सदियों से सताये गये लोगों की पीड़ा का चुनावी व्यापार कर रही हैं। इसमें कोई आश्चर्य नहीं होना चाहिए कि बार-बार दबाये-कुचले गये लोग आखिर इनकी चपेट में क्यों आ जा रहे हैं! आज भी दलित आबादी को कदम-कदम पर जो अपमान झेलने पड़ते हैं, आज भी एक आम सवर्ण रोजमर्रे की जिन्दगी में दलितों से जिस तरह पेश आता है, उससे आम दलित आबादी के सदियों पुराने जख्मों पर मरहम लगाने के लिए यही काफी है कि "जो भी हो अपनी जात के बीच से ही तो ऊपर उठकर ऊंची कुर्सी पर बैठा है।" इसलिए बार-बार उम्मीदें टूटने के बाद भी हमेशा के लिए नहीं टूटतीं। साथ ही यह सच्चाई भी सामने है आम दलित आबादी के सामने दलित मुक्ति के किसी वैकल्पिक रास्ते का खाका व्यावहारिक रूप में और पुरजोर ढंग से अभी पंहुच नहीं सका है।

इसके बावजूद क्या यह बात आज बेलाग-लपेट ढंग से तमाम दलित बुद्धिजीवियों-चिन्तकों-सिद्धान्तकारों से नहीं पूछी जानी चाहिये कि उनके पास दलित मुक्ति का प्रोजेक्ट क्या है? डा. अम्बेडकर के इस योगदान को भुला देना इतिहास के साथ नाइंसाफी होगी जिन्होंने दलित आबादी के सम्मान-स्वाभिमान, मानवीय गरिमा एवं दलित अस्मिता के प्रश्न को बेहद शिद्दत और तीखेपन से उठाया और दलित आबादी के बीच एक नयी जागृति पैदा की। लेकिन इसके बावजूद क्या आज यह सवाल बिल्कुल खरे ढंग से नहीं पूछना चाहिये कि क्या डा. अम्बेडकर के पास भी दलित मुक्ति का कोई प्रोजेक्ट था? दलित राजनीति के बीच से कोई ऐसी क्रान्तिकारी धारा अभी तक उभरकर सामने नहीं आयी है जो इन सवालों को उठाये।

इसके साथ ही हमें यह तो दिखायी देता है कि वामपन्थी क्रान्तिकारियों के बीच से कुछ लोग दलित प्रसंग में देश के कम्युनिस्ट आंदोलन की कमियों-कमजोरियों की चर्चा कुछ इस ढंग से करते हैं गोया वे 'पाप स्वीकार कर' रहें हों। वे इन 'गलतियों' व कमियों की चर्चा करने के नाम पर समूचे कम्युनिस्ट आन्दोलन की समग्र वैचारिक कमजोरियों के परिप्रेक्ष्य से काटकर कुछ इस तरह "गलतियों" का बखान करते हैं कि वह आज के दलित नेतृत्व के सुर से मिल जाता है। इससे दलित मुक्ति के आन्दोलन को कोई मदद तो मिलती नहीं, अलबत्ता यह दलित हित कीर्तन चाहे-अनचाहे दलितों के साथ एक घिनौना विश्वासघात जरूर बन जाता है।

आज मायावती-कांशीराम की अगुवाई वाली दलित राजनीति की जो घिनौनी चुनावी अवसरवादी धारा है वह घोर जनवाद विरोधी धारा के रूप में उभरकर सामने आयी है। बहुजन समाज पार्टी की अन्दरूनी कार्यप्रणाली, उसके नेताओं के रोजमर्रा के आचरण से लेकर पूरी पार्टी के राजनीतिक आचरण में उस पश्चिमी जनवाद का भी लेशमात्र मौजूद नहीं है जिससे डा. अम्बेडकर खुद इतने मोहाविष्ट थे। यह दलितों के बीच से उभरा अभिजन समाज का वह हिस्सा है जो घोर जनवाद विरोधी, खुदगर्जकैरियरवादी व आत्मतुष्ट है जिसका व्यापक दलित आबादी की पीड़ा से तथा उसकी मुक्ति के सपनों से कोई लेना-देना नहीं रह गया है। यह शुद्ध रूप से दलितों की इज्जत-आजादी के सपनों का चुनावी व्यापार कर रहा है। भाजपा से समझौता उसके इसी चरित्र का जीता-जागता उदाहरण है।

इसके अलावा आज दलित राजनीति की दो और धाराएं भी प्रमुख रूप से उभरकर सामने आयी हैं–एक उदित राज की अगुवाई वाली धारा और दूसरी, चन्द्रभान प्रसाद की अगुवाई वाली धारा।

उदित राज भाजपा के फासीवाद का विरोध करते हैं। उदारीकरण-निजीकरण की नीतियों का भी विरोध करते हैं। ऊपरी तौर पर देखने में लगता है कि यह धर्मनिरपेक्ष-प्रगतिशील दलित नेतृत्व काफी रैडिकल है। लेकिन जब इस राजनीति का व्यावहारिक पक्ष सामने आता है तो असलियत खुलकर सामने आती है। उदित राज(राम राज) दलितों को मुक्ति के लिए बौद्ध धर्म अपना लेने का रास्ता ही सुझा पाते हैं। इसी रास्ते वह डा. अम्बेडकर के वारिस होने का दावा कर रहे हैं।

दूसरी ओर, चन्द्रभान प्रसाद आज दलितों की दुरवस्था के लिए जिम्मेदार तमाम कारणों में आर्थिक पहलू को मुख्य पहलू मानते हैं। उनका मानना है कि जब दलितों की आर्थिक स्थिति ठीक होगी तो सामाजिक स्थिति भी ठीक होने लगेगी। लेकिन जब व्यावहारिक समाधान की बात आती है तो वे उदारीकरण-निजीकरण की नीतियों के उत्कट समर्थक बनकर सामने आते हैं और दलितों को इन नये परिवर्तनों के अनुकूल अपने को अनुकूलित-समायोजित करते हुए व्यक्तिगत रूप से आर्थिक उन्नति के रास्ते पर चलने के लिए कठोर परिश्रम करने की नसीहत देते हैं। उनका बहुप्रचारित भोपाल दस्तावेज दलित नेताओं की कुछ पुरानी पिटी-पिटायी मांगों से आगे नहीं जाता। यह अनायास नहीं है कि वह आज पूरी तरह कांग्रेसी राजनीति के पिछलग्गू बनकर रह गये हैं। चन्द्रभान प्रसाद भी डा. अम्बेडकर के असली वारिस होने का दावा करते हैं।

आज उत्तर भारत में समकालीन दलित राजनीति की तीनों धाराओं का परिदृश्य यही है। एक धारा कांग्रेस की पिछलग्गू बनी हुई है। दूसरी भाजपा से गांठ जोड़कर सत्ता में भागीदारी कर रही है। और तीसरी, उदित राज की धारा – वी. पी. सिंह के साथ करीबी तालमेल बनाकर चल रही है। ये तीनों धाराएं आज बुर्जुआ राजनीति की तीन मोहरें बन चुकी हैं जिनके सहारे दलित हितों की बाजी खेली जा रही है।

इस परिदृश्य में दलित मुक्ति का वास्तविक प्रोजेक्ट क्या हो? आधी सदी से अधिक अर्सा गुजर जाने के बाद कम से कम आज यह भ्रम तो पूरी तरह टूट ही जाना चाहिये कि दलित मुक्ति की कोई भी धारा जो बुर्जुआ चुनावी राजनीति की चौहद्दी में ही सिमटकर दलित मुक्ति की राह पर चलने की बात करती है, वह अगर ईमानदार भी हो तो मंजिल तक नहीं पंहुच सकती। मौजूदा पूंजीवादी जनतंत्र के ढांचे के भीतर, उत्पादन और समूचे राज्यतंत्र पर दलित आबादी के बीच से ऊपर उठे हुए, लोग अगर कब्जा भी कर लें तो इससे समूची आम दलित आबादी की मुक्ति नहीं होने वाली। अगर दलित राजनीति की भाषा में बात करें तो ऐसा राज दलितों के बीच से उभरे नये 'मनुवादियों' का राज ही होगा। शोषण-उत्पीड़न की व्यवस्था बदस्तूर चलती रहेगी।

इसलिए, सिर्फ एक क्रान्तिकारी प्रोजेक्ट को सामने रखकर ही दलित मुक्ति की राह पर आगे बढ़ा जा सकता है। सदियों से सताये हुए दलित जनों को श्रम के शोषण पर टिके मौजूदा पूंजीवादी अर्थतंत्र-राज्यतंत्र और समाज के ढांचे के खिलाफ बगावत के लिए तैयार करना होगा। देहाती क्षेत्रों में, शहरी औद्योगिक इलाकों में – हर जगह दलित आबादी को पूंजी के निर्मम शोषण-उत्पीड़न के शिकार तमाम मेहनतकश जनों के साथ क्रान्तिकारी एकजुटता कायम करते हुए पूंजीवाद-साम्राज्यवाद विरोधी नयी जनक्रान्ति के रास्ते पर चलना ही होगा। एक ऐसी क्रान्ति जो न केवल समूची सर्वहारा-मेहनतकश आबादी को पूंजी के शोषण-उत्पीड़न से आजादी दिलायेगी वरन सदियों से उत्पीड़ित-अपमानित दलित आबादी को सच्ची मानवीय बराबरी और गरिमा की जिन्दगी जीने के रास्ते खोलेगी। कहने की जरूरत नहीं कि यह क्रान्ति एक सर्वव्यापी, यानी, समाज के आर्थिक-राजनीतिक जीवन के साथ ही सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन को भी अपने में समेटे हुए होगी और इन सभी मोर्चों पर इसकी तैयारी आज से ही करनी होगी। इसके अलावा दूसरा कोई भी सुधारवादी रास्ता दलित समाज की सम्पूर्ण मुक्ति की मंजिल तक नहीं जा सकता।

इसके लिए आज जरूरी यह है कि दलितों की आम आबादी को चुनावी राजनीति के मायाजाल से बाहर निकालने के लिए जमीनी स्तर पर ठोस प्रचार-आन्दोलन की कार्रवाइयां रचनात्मक ढंग से चलायी जायें। यह मेहनतकश अवाम के अगुवा हिस्सों के सामने एक बहुत बड़ी चुनौती और जिम्मेदारी है। साथ ही साथ जातिगत अपमान के मुद्दे को मेहनतकश आबादी के बीच एक जबर्दस्त सामाजिक आन्दोलन बनाकर उठाना होगा और इसे आर्थिक-राजनीतिक प्रचार-आन्दोलन के साथ कुशलता और सर्जनात्मकता के साथ जोड़ना होगा।

आज दलित आबादी के बीच जो पढ़े-लिखे ईमानदार लोग हैं उन्हें भी इन सवालों पर खुले दिल से सोचना होगा। आज उनकी यह बड़ी जिम्मेदारी बनती है कि वे वैचारिक पूर्वाग्रहों और भावनात्मक अतिरेकों से बाहर निकलकर इन सवालों पर गम्भीरता से सोचें और दलित मुक्ति के सपनों को चुनावी व्यापारियों के चक्रव्यूह से बाहर निकालने में अपनी ऊर्जा लगायें। इसके लिए उन्हें विचारधारा के सवाल को भी जिम्मेदारी के साथ हल करने के रास्ते पर चलना होगा।

(पेज 7 से आगे)

पार्टी की बुनियादी समझदारी

तरह गद्दारी की। सर्वहारा जनवाद ने उनके लिए अपने आप को छद्मावरण में छुपा पाना असंभव बना दिया, और उनके प्रतिक्रान्तिकारी लक्षणों को दिन के उजाले में बेनकाब कर दिया। जनवाद पर आधारित केन्द्रीयता से, पूरी पार्टी के लिए एक एकीकृत अनुशासन से उनके लिए अपनी फूटकारी गतिविधियां जारी रख पाना असंभव हो जाता है और उनके षडयंत्र पूरी तरह विफल हो जाते हैं। राजनीतिक और सांगठनिक मोर्चों पर अपनी संशोधनवादी कार्यदिशा लागू करने के लिए लिन प्याओ और उसके पार्टी-विरोध ी गिरोह ने पार्टी में जनवादी केन्द्रीयता को नष्ट करने की हर कोशिश की। एक ओर वे नेतृत्व के आदेशों को मानने से इंकार करते हुए और व्यक्ति को संगठन से ऊपर रखते हुए, सिर्फ वही करते जो वे चाहते, दूसरी ओर उन्होंने गिरोह बनाए, लोगों पर दबाव डाले और गद्दारों की भर्ती की, अपने फायदे के लिए गुट बनाए, बुर्जुआ हेडक्वार्टर खड़ा किया और उन्मादी तरीके से पार्टी में फूटकारी गतिविधियों में हिस्सा लिया। पार्टी के भीतर जनवाद को खण्डित करने में उनका उद्देश्य था – इसके अन्दर बुर्जुआ हेडक्वार्टर का प्रभाव स्थापित करना, और पार्टी के भीतर केन्द्रीयता को नष्ट करने में उनकी चाहत थी – अध्यक्ष माओ की अगुवाई वाली केन्द्रीय कमेटी को तोड़ना और उसका विरोध करना। इन दो तरह के दांव-पेंचों का लक्ष्य एक ही था – पार्टी को विभाजित करना, इसकी बुनियादी कार्यदिशा और समाजवाद के सम्पूर्ण ऐतिहासिक दौर के लिए बुनियादी राजनीतिक सिद्धान्तों को बदलना, सर्वहारा अधिनायकत्व को उखाड़ फेंकना और पूंजीवाद की पुनर्स्थापना करना। इसीलिए जनवादी केन्द्रीयता को पार्टी में लागू करना सिर्फ कार्य के तरीकों का मामला नहीं है, बल्कि पार्टी के नेतृत्व की रक्षा का, अध्यक्ष माओ की सही क्रान्तिकारी कार्यदिशा और सर्वहारा वर्ग के अधिनायकत्व को सुदृढ़ बनाने से जुड़ा एक महत्वपूर्ण सवाल है। हमें ल्यू शाओ-ची, लिन प्याओ और ऐसे दूसरे उचक्कों के अपराधों की आलोचना जारी रखनी चाहिए, जो पार्टी में जनवादी केन्द्रीयता को नष्ट करना चाहते थे, और हमें लगातार इसे लागू करने की बाबत अपनी चेतना का स्तरोन्नयन करना चाहिए।

-क्रमशः

(पेज 3 से आगे)

उद्यागों का पलायन ...

यहां के हजारों मज़दूर बेरोजगार हो चुके हैं। एक और सार्वजनिक कारखाना एच.एम.टी. को भी बन्द करने या निजी क्षेत्र में बेचने की तैयारी चल रही है। यहां 'स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति' के नाम पर लोगों की 'जबरिया' छुट्टी की जा रही है। नियमित रूप से यहां वेतन तक का भुगतान नहीं हो रहा है। राज्य की सरकारी चीनी मिलों को भी बेचने की तैयारियां चल रही हैं।

निजी क्षेत्र के कारखानों की बन्दी/पलायन की तो पूरी एक फेहरिस्त बन चुकी है। थापर एग्रो मिल, प्रकाश ग्रुप के कारखानो, ए.एस.पी., सलोरा, नैना सेमी कण्डक्टर, तराई फूड, हिम आयल, मेहता एग्रोफ्यूल्स, दौलत इलेक्ट्रानिक्स, कुमाऊं वनस्पति, फाइन स्ट्रा बोर्ड, काशीपुर स्ट्रा एण्ड कार्ड बोर्ड, फोटो टैक प्रा. लि., वी.आर. पोलिमर्स, हिमाद्री सीमेंट, क्रिस्टल स्टेरिंग, काम्पैक्ट सर्किट एण्ड सिस्टम, आर. एस. पेपर मिल, सतनाम पेपर मिल, प्रभात टिस्यूज, किट प्लाई जैसे तमाम कारखानों की बन्दी अथवा पलायन से हजारों मजदूर बेरोजगार हो चुके हैं। रामाविजन, होण्डा पावर प्रोडक्टस जैसे कारखाने व तमाम राइस व तेल मिलें भी यहां से भागने की फिराक में हैं।

कुल मिलाकर उद्योगविहीन हो रहे इस नये राज्य में स्थिति दिन-प्रतिदिन दयनीय होती जा रही है। उदारीकरण-निजीकरण की मार से यहां के मज़दूरों का हाल भी बेहाल होता जा रहा है। यहां भी बेरोजगारों की एक बड़ी फौज खड़ी हो चुकी है। ऐसी विकट स्थिति में एक सशक्त और जुझारू आन्दोलन का अभाव है। जगह-जगह मज़दूर कहीं कमजोर तो कहीं तेज आन्दोलन तो कर रहे हैं लेकिन अलग-अलग बंटकर।

आज उत्तराखण्ड की मेहनतकश आबादी के सामने पहले से ज्यादा बड़ी चुनौती खड़ी है। इस चुनौती का मुकाबला जाति-क्षेत्र-मजहब और अलग-अलग कारखाने के बंटवारे की दीवार को ढहा कर ही किया जा सकता है। उन्हें संघर्ष के एक जुझारू प्लेटफार्म पर एकजुट होना होगा। उन्हें अपने लड़ाई के हथियारों को धारदार करते हुए अपने मुक्तिकामी संघर्ष के हिस्से के तौर पर लड़ने के लिए कमर कसनी होगी।

संघ परिवार का नया पैंतरापलट ...

(पेज 6 से आगे)

की बारी आती है तो बड़े विचित्र अव्यावहारिक अमली रूप सामने आते हैं। साथ ही, अक्सर यह भी देखने में आता है कि फौरी कार्यभारों को पूरा करना महज अनुष्ठान बनकर रह जाता है और दूरगामी कार्यभार अलग-थलग पड़ा रहता है।

आज साम्प्रदायिक फासीवादी ताकतों का मुकाबला करते हुए हमें हर प्रकार की आनुष्ठानिक विरोध की कार्रवाइयों से पीछा छुड़ाना होगा। हमें हिन्दुत्ववादी फासीवादी उद्धत आक्रामकता के खिलाफ जंग में मेहनतकश अवाम की जुझारू फौज तैयार करनी होगी। इसलिए, आज मेहनतकश अवाम के बीच हर राजनीतिक प्रचार-आन्दोलन की कार्रवाई में हमें साम्प्रदायिक फासीवाद विरोधी प्रचार-आन्दोलन के कार्यभार को बेहद सूझबूझ और व्यावहारिकता के साथ शामिल करना होगा। साथ ही, समाज की व्यापकतम संभव जनवादी-धर्मनिरपेक्ष आबादी को भी मेहनतकश आबादी के फासीवाद विरोधी संघर्ष के साथ जोड़ने के लिए गम्भीर व्यावहारिक कोशिशें करनी होंगी।

(पेज 9 से आगे)

एक मौत

सुपरवाइजर गाली देगा। क्या करे? चारों ओर देखता है। कोई दिखता नहीं। सभी अपने-अपने काम में लगे हुए हैं। अन्त में बोरी को ठेलकर दीवार की तरफ लाता है और दीवार पर एक टांग अड़ाकर किसी तरह उठा लेता है। लेकिन जैसे ही बोरी लादकर एक सीढ़ी चढ़ने का प्रयास करता है, उसका शरीर हवा में लहरा जाता है और बोरी लिये-दिये बायीं तरफ बांह के सहारे गिर पड़ता है। गिरने के साथ ही 'बाप रे बाप' की मरी हुई-सी आवाज आती है। वह बायीं बांह की तरफ औंधे मुंह पड़ जाता है।

ऊपर बैठा हुआ ठेकेदार मशीनमैन से पूछता है, 'आया नहीं क्या अंसरिया।'

'आया होता तो दिखता नहीं।' मशीनमैन ने कहा।

'अच्छा देखता हूं।'

काफी सुन्दर फैक्ट्री है। तीन मंजिल ऊपर काम होता है। दीवारें इतनी चिकनी कि हाथ रखते ही फिसल जाता है। दीवार हमेशा ठंडी रहती है। आधी ऊंचाई तक मार्बल लगा हुआ है। मार्बल और दीवार का रंग काफी मेल खाता है। दूसरी मंजिल पर आते ही, जहां एक तरफ जी.एम. और सी.एम. डी. बैठते हैं, सीढ़ियों पर भी मार्बल लगा हुआ है।

यहां तक आते-आते ठेकेदार की हंफनी छूटने लगती है। नाक से लम्बी-जोरदार छींक टपकती है। जल्दी से रूमाल निकालकर जैसे ही नाक पर लगाता है कि मार्बल की चिकनाई के कारण पैर अचानक दो सीढ़ी नीचे पड़ जाता है पर सम्भलते-सम्भलते सीढ़ी के घुमाव पर हाथ से शरीर को रोक लेता है। उसी घुमाव पर दीवार पर एक लड़की की अधनंगी तस्वीर टंगी है। उसके शरीर के निचले हिस्से पर कुछ चिथड़ा-सा बंधा हुआ है और ऊपरी हिस्सा सिर के बालों से एक हद तक ढंका हुआ है। बाकी शरीर नंगा है। उसकी आंखें कुछ-कुछ भंगेड़ियों से मिलती-जुलती हैं। इस तस्वीर के ठीक ऊपर इसकी दुगुनी साइज की लक्ष्मी देवी का फोटो लगा हुआ है जिनके हाथों से पैसा झर रहा है।

दो-चार गालियां देते हुए ठेकेदार नीचे उतर रहा है। उतरते हुए बकता हुआ चल रहा है, 'आज छोड़ूंगा नहीं, बताता हूं कैसे काम होता है। पैसा बीस को ही चाहिए, काम के नाम पर व्यायामशाला बना रखा है।'

अब तक वह नीचे आ चुका है। जैसे ही नीचे हाल में कदम रखता है तो अंसारी को देखते ही हक्का-बक्का रह जाता है। इतने में दो मज़दूर भी आ जाते हैं, ये कम्पनी की तरफ से काम करते हैं। कम्पनी का एक तिहाई काम ठेकेदार करता है। पहले कम्पनी में 300 मज़दूर काम करते थे। ये सभी परमानेण्ट थे। लेकिन बोनस के लिए मज़दूरों ने आन्दोलन कर दिया था। इसके जुर्म में कम्पनी ने लगभग 100 मज़दूरों का हिसाब कर दिया, 105 को टर्मिनेट कर दिया। बाकी जो 95 मज़दूर अन्दर आये उनमें से 55 को कम्पनी ने वी.आर. देकर निकाल दिया। बचे 40 मज़दूरों में से 25 को छह महीने के अन्दर आपस में बतियाने, घर-परिवार में किसी के मरने पर गांव चले जाने, बीवी के बच्चा होने पर बिना दस दिन पहले छुट्टी लिये उसी दिन छुट्टी पर चले जाने आदि के जुर्म में सस्पेंड कर रखा है। अब कम्पनी की तरफ से बस पन्द्रह मज़दूर बचे हैं। पूरी कम्पनी में अब इन पन्द्रह मज़दूरों को लेकर मात्र 140 मज़दूर हैं, पर प्रोडक्शन पहले जितना ही हो रहा है।

ये पन्द्रहों मज़दूर बेकार हैं। कम्पनी के पास इनके लिए कोई काम नहीं है। ये मज़दूर भी बखूबी जानते हैं कि उनकी क्या गति होने वाली है, इसलिए ये किसी से डरते भी नहीं हैं।

इन्हीं में से दो इस समय अंसारी के पास खड़े हैं। इन्हें देखकर ठेकेदार ठिठक जाता है। आवाज लगाता है, 'ओय रे बिहरिया, पंडितवा, भोटका .. इधर आ।' सभी तुरन्त उतरकर नीचे आ गये। इनसे ठेकेदार कहता है, 'देखियो रे, इसे क्या हुआ?' दो मज़दूर अंसारी का मुंह छत की ओर करते हैं, 'अरे ये तो बेहोश है।'

'अबे तो इसे जूता सुंघा।'

इन मज़दूरों ने भी जरूर सुन रखा होगा कि किसी के बेहोश होने पर जूता सुंघाना चमत्कारी इलाज होता है, लेकिन इस वक्त उनकी हिम्मत नहीं पड़ रही।

उनमें से एक मज़दूर जाकर मग में पानी लाता है और अंसारी के मुंह पर छींटा मारता है।

अंसारी आंख खोलता है और आंख पर बांह की छांह देते हुए अगल-बगल देखता है फिर जमीन पर हाथ टेकते हुए उठ जाता है।

इतनी देर में वहां काफी भीड़ जमा हो जाती है। अब तक कम्पनी वाले पन्द्रहों मज़दूर वहां पहुंच चुके हैं। उनके अलावा गार्ड, माली और स्वीपर भी दर्शक के रूप में चुपचाप खड़े हैं। भीड़ के ही बीच दो और लोग खड़े हैं, जिनके आजू-बाजू के पांच कदम इधर-उधर कोई नहीं खड़ा है। मज़दूरों की निगाह इन सज्जनों पर जब पड़ती है तो वे एक-एक कर खिसकना शुरू कर देते हैं।

उनमें से एक साहब गुर्राते हैं, 'चलो भागो यहां से।' यह सुनने के साथ ही कम्पनी के मज़दूर आंखों-आंखों में एक-दूसरे को इशारे करते हुए वहां से हट जाते हैं। सिर्फ ठेकेदार के मज़दूर ही वहां रह जाते हैं।

ठेकेदार गरजता है, 'अबे चल उठ।' अंसारी एक झटके से उठ खड़ा होता है, पर उठने के साथ ही फिर धड़ाम से गिर जाता है।

दूसरा साहब अंसारी के नजदीक आकर घुटनों के बल बैठने की कोशिश करता है। लगा कि वह अंसारी को सूंघना चाह रहा है। लेकिन जैसे ही घुटना मोड़कर बैठता है। बेल्ट का हुक चट से टूट जाता है और वह जमीन पर लुढ़क जाता है। उसका गोल्डेन फ्रेम का चश्मा झटके से नीचे आ गिरता है और उसका शीशा चकनाचूर हो जाता है।

उसके गिरते ही ठेकेदार और दूसरे साहब विद्युत गति से दौड़ पड़ते हैं और गिरे हुए साहब को हाथ पकड़कर उठाने की कोशिश करते हैं। हाथ के सहारे साहब उठे तब न। वह चिल्लाकर कहता है, 'छोड़ो।' दोनों के हाथ छोड़ते ही साहब चित्त। इस पूरे दृश्य पर कोई हंस नहीं रहा है। सभी की आंखें नीचे झुकी हुई हैं।

साहब खुद ही उठता है। ठेकेदार टूटा चश्मा उठाकर साहब को पकड़ाता है।

चश्मा झटककर फेंकते हुए साहब घुड़कता है, 'लगाता हूं तेरे ऊपर दस हजार का फाइन तब पता चलेगा।' फिर जल्दी से बात बदलते हुए दूसरे साहब की ओर मुखातिब होकर कहता है, 'जी. एम. साहब, मैं झुका था इसको सूँघने के लिए। आप भी सूँघकर देख सकते हैं, इसके शरीर से स्मैक की गन्ध आ रही है।' फिर ठेकेदार को भद्दी सी गाली देते हुए कहता है 'स्मैकियों की भरती करता है। सारे मरगिल्ले तुम्हें ही मिलते हैं।' फिर ठेकेदार के पीछे खड़े तीन मज़दूरों की ओर इशारा कर कहता है, 'देखो इन सबको, जैसे हवा पीकर रहते हैं।

साहब सीढ़ी की तरफ जाने लगता है। पीछे-पीछे दूसरे साहब भी हो लेते हैं। आगे वाला साहब रुककर बोलता है, 'जी. एम. मैंने आपसे कहा था कि इसका ठेका खत्म करो।'

'जी साहब, इसी महीने इसका हिसाब-किताब क्लीयर करने वाला हूं। दरअसल वो अर्जेण्ट आर्डर आ गया था। बस वो हो जाये, फिर इसको निकाल बाहर करता हूं।'

अच्छा चल इसे हटा यहां से। किराया देकर इसके घर पहुंचवा दे। एक लड़का भेज इसके साथ।' ठेकेदार को यह हिदायत देते हुए जी.एम. साहब आगे वाले साहब के पीछे-पीछे चलते रहे। आगे वाले साहब सी.एम.डी. है। सी.एम.डी. का क्या मतलब होता है, मज़दूर यह तो नहीं जानते। हां, इतना जानते हैं कि ये बड़े साहब हैं। फैक्ट्री इन्हीं की है।

जेब से बीस रुपये निकालते हुए ठेकेदार एक मज़दूर से कहता है, 'मार इसके चेहरे पर पानी से।'

मज़दूर अंसारी के चेहरे पर पानी का छींटा मारता है पर वह निश्चल पड़ा रहता है। मज़दूर के हाथ से मग छीनकर ठेकेदार उसके चेहरे पर पूरा पानी उड़ेल देता है। अंसारी अब भी कोई हरकत नहीं करता। ठेकेदार हड़बड़ाते हुए दौड़कर माली के साथ से बाल्टी छीनकर पूरा पानी उसके शरीर पर उड़ेल देता है।

अंसारी पीड़ा के साथ अपनी आँखें खोलता है। ठेकेदार कहता है, 'अबे यहीं मरेगा क्या?' फटाफट बीस का नोट पंडितवा को पकड़ाते हुए कहता है, 'रिक्शे से इसके घर छोड़ आ। ठेकेदार से पैसा लेकर पंडितवा अंसारी को उठाने की कोशिश करता है। अंसारी कराहते हुए कहता है, 'मेरा पैसा दे दो। मैं दवा कराउंगा।'

'पैसा माँगता है। साला मेरा ठेका खत्म करवा दिया। स्मैक पीता है। उठा बे, इसे ले जा।'

अंसारी उठने से इंकार कर देता है। कहता है, जाकर क्या करूंगा। डाक्टर कह रहा था, शरीर में खून नहीं है। दवा के लिए तो पैसे नहीं है मेरे पास, कहते हो स्मैक पीता हूं।'

'यहीं बहस करेगा या हटेगा यहां से। उठाता क्यों नहीं इसे रे'। यह कहते हुए खुद ही ठेकेदार उसे पकड़कर उठाता है और घसीटते हुए फैक्ट्री से बाहर कर देता है।

अंसारी अब भी अड़ा रहता है, 'मैं नहीं जाऊंगा। मेरा पैसा दो। दवा करानी है, नहीं तो मैं मर जाऊंगा।'

सामने से रिक्शे वाले को इशारा कर ठेकेदार बुलाता है। इतने में अंसारी फिर बेहोश हो जाता है। उसे किसी तरह टाँग-ठूँग कर रिक्शे पर लादकर पंडितवा को भी बैठने का इशारा करता है।

'इसे जल्दी से छोड़कर आ जइयो। बहुत काम पड़ा है। जा रे, जल्दी जा। इसका घर देखा है न? पंडितवा सिर हिलाता है, 'हाँ'।

ठेकेदार गेट बन्द कर ऊपर चला जाता है।

रिक्शा जैसे ही गेट पार करता है, अंसारी का शरीर पंडितवा को बोझ मालूम होता है। जैसे ही वह उसको ठीक करने का प्रयास करता है, अंसारी धड़ से नीचे गिर जाता है।

रिक्शे से कूदकर पंडितवा अंसारी को देखता है। रिक्शे वाला उसकी नब्ज और आँख देखकर कहता है, 'अरे ये तो मर गया।'

'क्या? मर गया?'

पंडितवा दौड़ते हुए गेट पर आता है। बदहवास होकर हांफते-हांफते गेट से भीतर घुसते ही चिल्लाने लगता है।

'मर गया, मर गया।'

अब तक दो-चार मजदूर इकट्ठा हो चुके हैं। ठीक इसी वक्त बड़े साहब अटैची के साथ नीचे उतरते हैं। पंडितवा हाँफते-हाँफते हुए कहे जा रहा है, 'यहीं है, मर गया'।

साहब को देखते ही सभी मज़दूर हरिण हो जाते है। साहब, पंडितवा को बुलाकर पूछता है, 'क्या हुआ?'

'साहब, साहब वह मर गया।' पंडितवा की आवाज अब धीमी हो गयी थी।

'कौन मर गया?' साहब चलते हुए पूछता है।

'वही साहब, अंसारी, जिसको आप सूँघ रहे थे।'

'कौन अंसारी?' साहब अनमने भाव से फिर पूछता है।

'वही सर, जो अभी यहाँ बेहोश पड़ा था।'

'कौन बेहोश था? कहां है?'

'साहब सड़क पर मरा पड़ा है।'

इतने में ठेकेदार भी नीचे आ चुका था। साहब पंडितवा की तरफ गुस्सायी नज़र से देखते हुए बोला, 'पागल तो नहीं है तू। कोई सड़क पर मर गया तो यहाँ क्यों चिल्ला रहा है? बहुत से लोग देश में रोज मरते हैं। एक और मर गया तो क्या हुआ।' फिर ठेकेदार से मुखातिब होते हुए बोला, 'पागलों का मत भरती किया कर। समझा। इसे ऊपर ले जा।'

ठेकेदार उसे ऊपर खींच ले जाता है।

साहब के लिए दरवाजा खुलता है। अब तक वह गार्ड के पास पहुँच चुका है। ड्राइवर गाड़ी बाहर कर रहा है। साहब गार्ड को सम्बोधित कर कहता है:

'हद का पागलपन है।'

'जी सर।' गार्ड पैर पटकता है।

'कोई सड़क पर मर जाये तो हम क्या करें?'

'जी सर।' गार्ड एकदम सावधान की मुद्रा में रोबोट की तरह कहता है।

'सुनो'-

'जी सर।'

'जब तक मैं न आ जाऊँ, कोई अन्दर-बाहर नहीं होगा। अगर कोई पूछे तो ठीक उसी ढंग से जवाब देना जैसे मैंने दिया है।'

'जी सर।' गार्ड भड़ाम से गेट बन्द कर ताला लगा देता है।

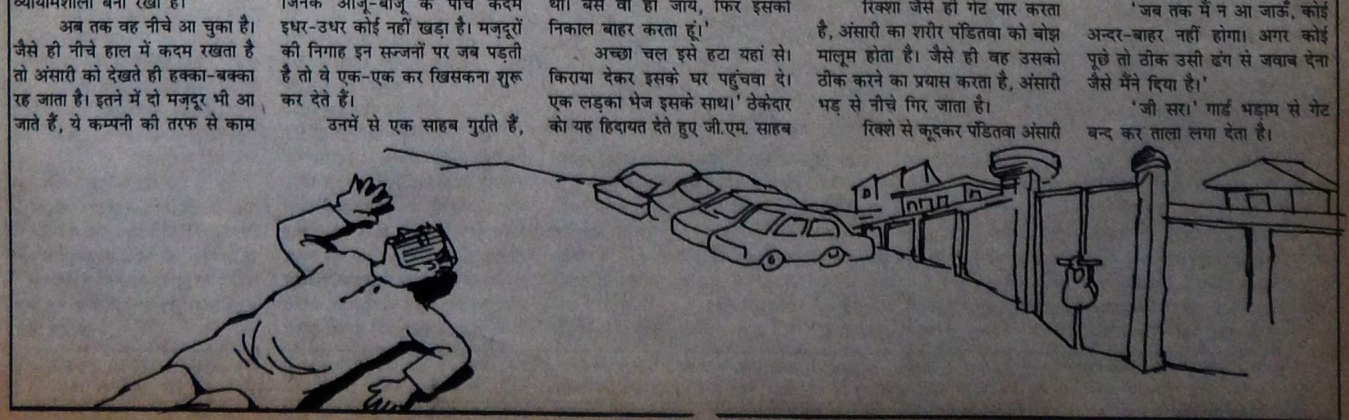

नेपाल में देउबा सरकार की बर्खास्तगी

शासक वर्गों में हड़बोंग, नग्न निरंकुशशाही का खतरा पर नेपाली अवाम के संघर्ष को कुचला नहीं जा सकता

(बिगुल संवाददाता)

दिल्ली। नेपाल में शेर बहादुर देउबा सरकार की बर्खास्तगी नेपाली जनता के क्रान्तिकारी संघर्षों से शासक वर्गों में मची हड़बोंग का नतीजा है। अमेरिकी साम्राज्यवाद की रहनुमाई में सभी साम्राज्यवादी लुटेरों और इनसे गांठ जोड़े भारतीय शासक वर्गों की हरसंभव मदद के बावजूद शेर बहादुर देउबा की सरकार जनसंघर्षों के प्रचण्ड आघातों से लगातार हिचकोले खा रही थी और आखिरकार शाह ज्ञानेन्द्र ने अपने प्यादे को रद्दी की टोकरी में फेंक दिया।

शाह ज्ञानेन्द्र ने शेर बहादुर देउबा के साथ ठीक वही सुलूक किया है जो एक सौदागर अपने बूढ़े घोड़े के साथ करता है। बर्खास्तगी के बाद राजमहल से जारी विज्ञप्ति में यही बात कही गयी थी कि देउबा सरकार को नाकारेपन के कारण बर्खास्त किया गया है। देउबा का नाकारापन यही था कि माओवादियों के नेतृत्व में नेपाली जनता के संघर्षों ने संवैधानिक राजशाही के सामने जो चुनौती पेश की थी उसका वह कारगर ढंग से मुकाबला नहीं कर पा रहे थे।

क्या यह अकेले देउबा या उनकी सरकार का "नाकारापन" था? नहीं! समूचा नेपाली शासक वर्ग और उसके सभी सरपरस्तों की मिली-जुली ताकत नेपाली जनता की एकजुट ताकत और अपने हाथों एक नयी दुनिया गढ़ने के उसके संकल्पों के आगे बौनी साबित हुई है। पिछले छह वर्षों से नेपाल की कम्युनिस्ट पार्टी (माओवादी) के नेतृत्व में सामन्ती अभिजातों और बुर्जुआ प्रतिक्रियावादियों की जालिम सत्ता को जो चुनौती मिली है, उसका मुकाबला कैसे किया जाये, इस सवाल पर नेपाली कांग्रेस सहित तमाम बुर्जुआ पार्टियों के बीच आपस में और राजशाही के साथ तीखे मतभेद मौजूद रहे हैं। गिरिजा प्रसाद कोइराला की जगह शेर बहादुर देउबा का प्रधानमंत्री बनना नेपाली कांग्रेस के भीतर उभरे तीखे मतभेदों का ही नतीजा था। फिर नेपाली कांग्रेस का दो हिस्सों में औपचारिक विभाजन, नेपाली संसद का भंग किया जाना, इमर्जेंसी की घोषणा, इमर्जेंसी को लेकर भी विभिन्न बुर्जुआ पार्टियों में मतभेद, आगामी नवम्बर में चुनावों की घोषणा, फिर देउबा द्वारा एक साल के लिए चुनावों को टालने की सिफारिश – यह समूचा घटनाक्रम शासक वर्गों में पैदा हुई दरारों-दरकनों का ही उदाहरण है।

खुद देउबा ने चुनाव टालने की सिफारिश का आधार माओवादियों की "हिंसा" को बनाया था। देउबा की इस सिफारिश और सरकार की बर्खास्तगी का नेपाली कांग्रेस (कोइराला गुट), राजशाही समर्थक राष्ट्रीय प्रजातंत्र पार्टी, चुनावी वामपन्थी पार्टी ने.क.पा. (ए-माले) – सबने विरोध किया। खुद माओवादी पार्टी ने भी इसका विरोध किया। जाहिर है सबके विरोध के आधार अलग-अलग थे। माओवादियों के विरोध का कारण यह था कि चुनाव टलने का मतलब होगा – ज्ञानेन्द्र का नग्न निरंकुश शासन और जनसंघर्षों का और भी बर्बर दमन। लेकिन अन्य पार्टियों के विरोध के कारण उनके अपने-अपने निहित राजनीतिक स्वार्थ थे। चुनाव टालने की सिफारिश कर आखिरकार देउबा ने ज्ञानेन्द्र की निरंकुशशाही के लिए खुद रास्ता साफ कर दिया।

बर्खास्तगी के बाद हालांकि ज्ञानेन्द्र ने यह आश्वासन दिया है कि वह सभी राजनीतिक दलों से बातचीत कर पांच दिनों के भीतर नयी कामकाजू सरकार का गठन कर देगा। हो सकता है यह सरकार बन भी जाये। लेकिन जो सरकार बनेगी वह ज्ञानेन्द्र की कठपुतली सरकार बनेगी जिसकी निगरानी में अगर चुनाव होगा तो इसका मतलब होगा हर तरह के जोड़-तोड़, तीन-तिकड़म फर्जीवाड़े के जरिये "निर्वाचित" कठपुतली सरकार बनवाना, जिसकी डोर ज्ञानेन्द्र के हाथों में रहे। इस समूचे घटनाक्रम से बुर्जुआ जनवाद का स्वांग तो बेनकाब हुआ ही है, साथ ही इसे "रहस्यमय" राजमहल हत्याकाड से भी जोड़कर देखे जाने की जरूरत है जिसके बाद ज्ञानेन्द्र ने गद्दी सम्हाली थी।

बहरहाल, यह समूचा घटनाक्रम आगे किस ओर जाता है, यह धीरे-धीरे सामने आता जायेगा। लेकिन इतिहास गवाह है कि जालिम शासक वर्ग अपनी सत्ता की हिफाजत के लिए जो भी कदम उठाते हैं उसकी एक अन्तर-विरोधी गति होती है। नेपाली शासक वर्ग आगे जो भी कदम उठायेगा वह जनता के संघर्षों को एक नया संवेग भी प्रदान कर सकता है। नेपाल से राजशाही को खत्म करने का तो नारा माओवादियों ने दिया है वह मौजूदा घटनाक्रमों की रोशनी में जनता की नजरों में और भी प्रासंगिक और उपयोगी हो उठा है।

नेपाली जनता के क्रान्तिकारी संघर्ष के सामने आज अगर कोई चुनौती है तो वह है आज की दुनिया की प्रतिकूल परिस्थितियां। दुनिया के पैमाने पर क्रान्तिकारी जनसंघर्षों की धारा की कमजोरी का लाभ उठाकर साम्राज्यवादी और प्रतिक्रियावादी बुर्जुआ ताकतें नेपाली जनता के संघर्षों को कुचलने के लिए एकजुट हो गयी हैं। "माओवादी हिंसा" पर काबू पाने में भारत सरकार की मदद के लिए नेपाली शासक वर्ग का बार-बार आभार प्रदर्शन भारत सरकार की घिनौनी भूमिका को अपने आप उजागर करता है। यूं भी यह जानकारी आम हो चुकी है कि नेपाल में "आतंकवाद" को कुचलने के नाम पर भारत सरकार ने नेपाल की सरकार को सैन्य प्रशिक्षण के अलावा भारी मात्रा में सैनिक साजो-सामान मुहैया कराया है।

इन कठिन चुनौतियों के बावजूद नेपाल के माओवादियों ने खुद को नेपाल के क्रान्तिकारी वामपन्थी शिविर की मुख्य धारा सिद्ध किया है। हालांकि नेपाल में कुछेक ऐसी धाराएं आज भी मौजूद हैं जो माओवादी आन्दोलन में तरह-तरह के मीनमेख निकालती हैं और अपने "गम्भीर वैचारिक मतभेद" प्रकट करते हैं। लेकिन इन धाराओं से जुड़े लोग यह क्यों नहीं बताते कि वे खुद क्यों अप्रासंगिक होते चले जा रहे हैं? ऐसा क्यों हुआ कि वे धीरे-धीरे परिधि पर फेंक दिये गये हैं। अगर उनकी सोच सही है तो फिर क्रान्तिकारी संकट के आज जैसे समय में जनता के व्यापक हिस्सों को लेकर कोई संघर्ष क्यों नहीं कर रहे हैं?

बहरहाल, शासक वर्गों के तमाम पूर्वानुमानों को झुठलाते हुए नेपाल की कम्युनिस्ट पार्टी (माओवादी) के कुशल क्रान्तिकारी नेतृत्व में नेपाली जनता का संघर्ष जारी है। खुद नेपाली सेनाध्यक्ष की यह स्वीकारोक्ति कि माओवादी आन्दोलन को कुचलना तो दूर उनके प्रतिरोध को तोड़ पाना भी मुमकिन नहीं हो सका है, इसका प्रमाण है। उसने खुद कहा कि माओवादी आन्दोलन की जड़ें जनता में काफी गहरी जमी हुई हैं। शाही सेना में भीषण असन्तोष की जो खबरें आती रही हैं, इससे वे भी सही जान पड़ती हैं।

नेपाल की जनता का क्रान्तिकारी संघर्ष आज जितनी गहराई और व्यापकता में अपनी जड़ें जमा चुका है उससे यह बात दृढ़ता से कही जा सकती है कि विश्व पूंजी के हर प्रकार के समर्थन-सहयोग के बावजूद नेपाली क्रान्ति को कुचला नहीं जा सकता। यह इतिहास का सच है कि अगर नेतृत्व कोई विचारधारात्मक एवं रणनीतिक गलती नहीं करता है तो फौरी तौर पर कुछेक मोर्चों पर पराजयों के बावजूद जनक्रान्ति लगातार आगे बढ़ती रहती है।

एन. जी. ओ. से टांका भिड़ाए "वामपंथी ज्ञान धुरन्धर" और भद्र-कुलीन "सेकुलर" जन

देश के कुछ "वामपंथी ज्ञान धुरन्धर" एन. जी. ओ. से टांका भिड़ाकर समाज बदलने के मजे लूट रहे हैं। समाज बदलने के लिए जरूरी स्रोत संसाधनों के लिए ये जनता पर निर्भर नहीं हैं। साम्राज्यवादी देशों के दाता एजेंसियों से नियमित मोटी रकमें हासिल कर ये उच्च मध्यवर्गीय जिन्दगी गुजारते हुए सार्थक जीवन जीने का सुख भोग रहे हैं। सभा-सोसायटियों में, विद्वत् जनों के बीच इनका बड़ा मान है। कृति-सिद्धान्त की वजनदार पत्रिका निकालते हुए, 'सिविल सोसायटी' बनाने के लिए कुछ-कुछ समाज-सुधारनुमा जनकार्रवाइयों से फुर्सत निकाल कर बीच-बीच में मन फेर के लिए कुछ रैडिकल किस्म की रैलियों-प्रदर्शनों को भी अपनी उपस्थिति से वजनदार बनाते रहते हैं।

जब से टांका भिड़ा है, तबसे एन. जी. ओ. से मधुयामिनी लगातार जारी है। चरम-सुख की वर्षा हो रही है। लेकिन ये सज्जन अभी इतने बेशर्म नहीं हुए हैं कि यह सबकुछ खुल्लमखुल्ला करें। दुनिया से अभी ये डरते हैं। फिर होशियारी में भी अव्वल हैं। सो, यह सारा प्रेम-प्रपंच लुक-छिपकर चल रहा है। आखिर लुक-छिपकर प्रेम-प्रपंच चलाने का आनन्द ही कुछ और है।

क्रान्तिकारी वामपंथ के ठसपन से चिढ़े इन चतुर-सुजान वामपंथी विद्वानों को सीधे-सादे 'संस्थागत दान' लेना शोभनीय नहीं लगता। ये सीधे एन. जी. ओ. नहीं चलाते। अपने परिवार जनों और कार्यकर्ताओं से विभिन्न एन. जी. ओ. में नौकरी करवाते हैं और परोक्ष दान हस्तगत करते हैं। प्रत्यक्ष दान हस्तगत करना! छिः! छिः! परोक्ष दान महाकल्याण!

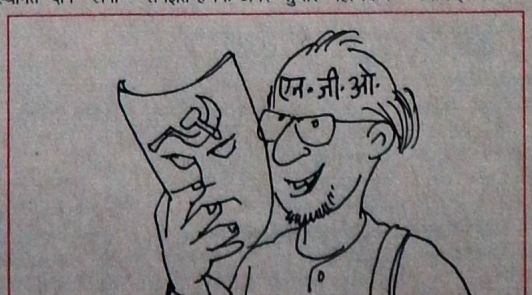

देश के कम्युनिस्ट आन्दोलन के इतिहास में गहराई तक गोता लगाकर इन्होंने एक बेशकीमती मोती यह चुना है कि क्रान्ति के काम के साथ-साथ सुधार के काम को बिल्कुल नजरअन्दाज कर दिया गया। सो, इस कमी की भरपाई करने के लिए वे सुधारपरक जनकार्रवाइयों में पिल पड़े हैं। दरअसल, ऐसा नहीं है कि एन. जी. ओ. खड़ा करने के पीछे साम्राज्यवादी दानदाताओं के असली मंसूबों को ये नहीं समझते। इन्हें इतना मासूम समझना खुद मासूम बनना होगा। ये समझते हैं कि अगर 'सुधार' नहीं किये जायेंगे तो विद्रोह का लावा फूट पड़ेगा। कम से कम इतने समझदार तो ये हैं ही कि इतनी-सी बात को समझ सकें। लेकिन क्या करें? 'समझदारों का गीत' गाना इन्हें बहुत अच्छा लगता है। 'जान के भी वो कुछ भी न जानें, हैं कितने अनजाने लोग!'

एन. जी. ओ. से टांका भिड़ाए कुछ ऐसे भी लोग हैं जिन्हें साम्प्रदायिक फासीवाद का मुकाबला करने में विशेष मजा आता है। देश के भीतर आजकल जो साम्प्रदायिकता विरोध चल रहा है उसमें इस ब्राण्ड के एन. जी. ओ. काफी वर्चस्वशाली स्थिति में हैं। ये कुलीन वामपन्थी सेकुलर जन अपने साम्प्रदायिकता विरोध से काफी सन्तुष्ट हैं। इनके चेहरों पर सन्तोष का कुछ-कुछ वैसा ही भाव रहता है जैसा मलाई खा लेने के बाद बिल्ली के चेहरे पर रहता है। ये बड़े शरीफ और मासूम किस्म के साम्प्रदायिकता विरोधी हैं। ये नहीं समझ पाते कि इनके ढंग से साम्प्रदायिकता विरोध से फासिस्टों को ही फायदा पहुंचता है। हाथ में मोमबत्तियां लेकर मार्च करते, कबीर बानी गाते, गंगा-जमुनी संस्कृति की दुहाई देते, अंग्रेजी में बतियाते, अंग्रेजी में ही सेमिनार-पेपर पढ़ते, मण्डी हाउस के सालाना जलसे में शामिल होते ये फासिस्टों को यह मौका देते हैं कि उन्हें बड़ी आसानी से किसी दूसरे ग्रह का निवासी घोषित कर जनता की नफरत का पात्र बनाया जा सके।

इस ब्राण्ड के सज्जनों में से कुछ लोग अंग्रेजी भाषा में मोटे चमकीले कागजों पर बड़े-बड़े हर्फों में लिखी पत्रिकाएं तक निकालते हैं और उसे बड़ी फर्राख-दिली के साथ बांटते हैं। दरअसल, यह सारा साम्प्रदायिक फासीवाद विरोधी प्रपंच इसी व्यवस्था की चौहद्दी के भीतर महदूद एक अनुकूलित विरोध है। विरोध के ये तरीके इन्हें इसलिए भाते हैं क्योंकि साम्प्रदायिक फासीवाद का वास्तविक विरोध क्रान्तिकारी संघर्षों की ओर ले जाता है। इन संघर्षों की आंस से ये कुम्हला सकते हैं इसलिए उसके पास तक नहीं फटकते।

तो, ऐसे-ऐसे किसिम-किसिम के एन. जी. ओ. प्रपंच आजकल चल रहे हैं देश में। सुधी जनों! अगर आप को भी ऐसे कुछ प्रपंचों की खास जानकारी हो तो बताना मत भूलिएगा। लेकिन ध्यान रहे, इस प्रपंच में खुद आप मत उलझ जाइयेगा!

-आनन्द देव

मुद्रक, प्रकाशक और स्वामी डा. दूधनाथ द्वारा 69, बाबा का पुरवा, निशातगंज, लखनऊ से प्रकाशित एवं उन्हीं के द्वारा वाणी ग्राफिक्स, अलीगंज, लखनऊ से मुद्रित। कम्पोजिंग : कम्प्यूटर प्रभाग, राहुल फाउण्डेशन, लखनऊ।
सम्पादक मण्डल : डा. दूधनाथ, मुकुल। सम्पादकीय पता : 69, बाबा का पुरवा, पेपर मिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006, सम्पादकीय उपकार्यालय : जनगण होम्यो सेवासदन, मधाईपुर, भऊ।